

द्वितीय भाग

हृषीकार्थसमुत्पन्ने

प्रतिक्षणविनश्वरे ।

सुखे कृत्वा रतिं मूढ विनशष्टं भुवनत्रयम् ॥५७॥

इन्द्रियसुखोंमें रतिकी प्रतिषेध्यता हे आत्मन्! इन सांसारिक सुखोंमें रति करके तूने अपने आपका अब तक विनाश किया है। अब तो अपने आपका स्वरूप निरख। यह आत्मा अमूर्त विनाशी है, लेकिन इस जगतमें कौनसा जीव अपने आपको अमूर्त और अविनाशी अनुभव कर रहा है? यदि अमूर्त और अविनाशी अपने आपको माना होता तो फिर विपदा किसकी, शंका किसकी, भय किसका? निरन्तर शंकित रहता है, निरन्तर विपदाका अनुभव करता है यह सब अज्ञान परिणामोंकी ही बात है कि हमने अपनेको अमूर्त और अविनाशी नहीं मान पाया है। इसका प्रधान कारण है कि हम इन देहादिक सुखोंसे प्रेम रखते हैं। इन्द्रिय जन्य सुख भोगविलास आरामके सुखोंमें रति की तो उसके साधन में ममता अपने आप आयेगी। इन्द्रिय सुखको चाहा तो यह जीव इन्द्रिय सुखके साधनोंको भी जुटायेगा और उन साधनोंकी पराधीनतामें यह अपने आपके स्वरूप को भूल जायेगा, दुःखी होगा।

आत्माका आकिञ्चन्य भैया! इसी समय देख लो, यदि कोई ऐसा उपयोग बन आय अपने आपके बारेमें कि यह मैं आत्मा आकाशकी तरह निर्लेप रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित सबसे न्यारा अविनाशी हूँ, यही अनुभव कर लिया जाय तो सारे क्लेश कम हो जायेंगे। क्लेश बनते हैं ममता से। इन अनन्ते जीवोंसे कुछ जीवोंको मान लिया कि ये मेरे हैं, अब उनसे विपत्ति बढ़ने लगी। इन अनन्ते जीवोंमें से दस पांच हजार मनुष्योंमें अपने नामकी धुन बन गई, ये हमें समझें कि हम वैभववान् हैं आदिक धुन बन गयी, लो इसे कष्ट होने लगा। भला सोचिये तो सही कभी तो मृत्यु होगी? मृत्यु होनेके बाद इस जीवकों फिर यहाँकी क्या सम्पदा क्या व्यवहार? कुछ भी तो नहीं है।

आत्मपोषणका यत्न यहाँ एक स्वरूपदृष्टिकी बात कही जा रही है। जैसे वृक्ष को रात दिन नहीं सींचा जाता। किसी भी टाइम १० मिनट पानी डाल दिया, किन्तु उस १० मिनटमें जो पानी डाला उसका प्रभाव शेष २४ घंटे चलता है। वह वृक्ष हरियाता रहता है, ऐसे ही हम अपने आपकी स्वरूपदृष्टिका एक आनन्दसिंचन करें, किसी भी क्षण ऐसा उपयोग बना लें कि मैं उन विपदावोंसे रहित केवल एक शुद्ध चित्प्रकाश हूँ। जो मैं हूँ तैसे ही ये सब हैं ऐसा एक चैतन्यस्वरूप अपनेको मान लें वहाँ भय नहीं होता, दुःख नहीं होता है। यह काम २४ घंटेमें एक सेकेण्ड भी बन जाय तो बाकी समस्त रात दिन अनाकुलतामें व्यतीत होंगे।

सांसारिक सुखोंमें रति न करनेका अनुरोध हे आत्मन्! इन इन्द्रिय और पदार्थोंके सम्बन्धसे उत्पन्न हुए सांसारिक सुखोंमें रति मत करो। ये समग्र सुख, ये समस्त पदार्थ प्रतिक्षण विनाशीक हैं, ये टिकनेवाले नहीं हैं। इन्हें अपनावो तो भी नहीं टिकते। इन सुखोंके पीछे अपने आपके

उपयोगको खेद भिन्न मत करो। श्रद्धा सत्य बनावो, नहीं करते बनता तो वह एक परिस्थिति है, आसक्ति है, पर सच्ची बात जाननेकी भी कंजूसी करोगे तो पार न पा सकोगे। बने सो कीजिये। न बने, न कर सकें तो न कीजिये, किन्तु सत्य बातकी श्रद्धा तो बना लीजिये। मैं सबसे न्यारा हूँ, यह बात यदि झूठ है तो न मानो और सत्य है तो मान लीजिये। पूजामें आप कहा करते हैं कीजे शक्ति प्रमाण, शक्ति बिना सरधा धरे। शक्ति प्रमाण करिये, पर नहीं करनेकी शक्ति तो श्रद्धा तो यथार्थ बनाइये। श्रद्धा यथार्थ होगी तो अपना पूरा पड़ेगा, श्रद्धा ही ठीक न रही तो फिर अपना कहाँ जमाव होगा? हित नहीं हो सकता।

सुख-दुःख आनन्द सब ज्ञानके विचारसे हैं। हम कैसा ज्ञान बनायें कि आनन्द हो जाय और कैसा ज्ञान बनायें कि दुःखी हो जायें। ममतासे मिला हुआ ज्ञान चलेगा तो नियमसे दुःख होगा और सबसे निराला अपने आपको निरखने का ज्ञान चलेगा तो नियमसे दुःख होगा और सबसे निराला अपने आपको निरखनेका ज्ञान चलेगा तो वहाँ आनन्द होगा। सारा जीवन दुःखमय व्यतीत करें उसमें कुछ हित नहीं है। अनित्य पदार्थोंको अनित्य जान जावो। अनित्य भावनामें यह शिक्षा दी गयी है जो चीज मिट जाने वाली है उसे मानते तो रहा कि यह चीज मिटेगी जरूर। इससे भी लाभ है। जब वह चीज मिटेगी तो यह ख्याल जरूर आयेगा कि मैं तो पहिलेसे ही सोच रहा था कि यह चीज अवश्य मिटेगी। लो आज मिट गई, इसमें दुःख करनेकी क्या बात है? अनित्य पदार्थोंमें नित्य माननेकी बुद्धि जग रही हो तो वहाँ अचानक वियोग होने पर वज्रपात जैसा क्लेश माना जायेगा। इससे भाई जगत्में जो कुछ दृश्यमान है, जितने भी इन्द्रियोंके विषय हैं, जो भी मनकी कल्पनाके आश्रय हैं वे सब नियमसे नष्ट होने वाले हैं, इस प्रकारकी भावना भाइये। सोचिये चिन्तन कीजिये।

विषय सुखोंकी रतिसे बरबादी—ये तीन लोकके सभी जीव विनश्वर वैषयिक सुखोंकी रति करके नष्ट हो रहे हैं। मनुष्योंको देखो ये भी वैषयिक सुखोंमें बरबाद हो रहे हैं, पशु पक्षियोंको देखा तो वे भी वैषयिक सुखोंमें बरबाद हो रहे हैं। ये केचुवा वगैरह छोटे-छोटे बरसाती जीव गिजाइयां ये भी अपने-अपने विषयोंके सुखोंमें रति करके अपने आपको बरबाद कर रहे हैं। सोचो संभलो, एकदम बाहरी चीजोंमें आसक्त होनेकी हठ न बनावो। कभी तो छूटेंगे कभी तो मरण होगा। उससे पहिले यदि कुछ दिन अपनेको विरक्त रख लो तो कौनसा नुकसान पा लिया? हे आत्मन्! इन इन्द्रियजन्य सुखोंमें, इन विनाशीक सम्पदावोंमें रति मत करो।

नित्य तत्त्वकी दृष्टिसे अनित्यभावनाकी सफलता—अनित्य भावनामें अनित्य जानने के साथ-साथ अपने आपको अविनाशी भी समझ लो। ये विनाशीक पदार्थ यदि मुझसे अलग हो गए तो उसमें मेरी क्या हानि है? यह मैं आत्मा तो एक अविनाशी तत्त्व हूँ, सदाकाल रहने वाला हूँ, इस अविनाशी तत्त्वकी सुध लीजिये। इस ज्ञानार्णव ग्रन्थमें पूर्व भूमिकाके बाद यह अनित्यभावनाका प्रथम प्रकरण चल रहा है।

भवाब्धिप्रभवाः सर्वे सम्बन्धा विपदास्पदम्।

सम्भवन्ति मनुष्याणां तथान्ते सुष्टु नीरसाः ॥५८॥

सम्बन्धोंकी विपदास्पदता—इस संसार सागरमें उत्पन्न हुये ये समस्त विभाव, ये समस्त सम्बन्धी विपत्तिके साधन हैं। सोच लीजिये आज जो भी मनुष्य कुछ विपदा समझ रहे हैं उसका कारण क्या है? किसी परका लगाव सम्बन्ध। तो ये समस्त सम्बन्ध विपत्तियोंके साधन हैं, कुछ ही दिनों बाद ये नीरस लगने लगते हैं। खूब अनुभव कर लो-जो भी सम्बन्ध हुआ सब सम्बन्ध कुछ समय तो सुहावना लगता है। नया सम्बन्ध है, नयी उमंग है किन्तु कुछ कालके बाद वहीका वही सम्बन्ध नीरस लगने लगता है। भले लड़के हैं, स्त्री आज्ञाकारिणी है। सर्व परिजन भले हैं पर उन्हीं परिजनोंमें रात दिन रहकर वे उतने प्रिय नहीं रह पाते जितने कि प्रारम्भमें वे प्रिय लगते थे, नीरस हो जाते हैं। अन्य इंद्रियोंके विषय भी देखो—स्पर्शन इन्द्रियका विषय, पुरुषको स्त्री, स्त्रीको पुरुष, ये थोड़े समयको तो सुहाते हैं, पर थोड़े ही दिन बाद नीरस जंचने लगते हैं। भोग भोगनेके पश्चात् तुरन्त ही पछतावा आने लगता है। भोजन खा लिया, पेटमें पहुँच गया, अब वह नीरस लगने लगा, कुछ रस आता है क्या? पेटमें पहुँचे हुए भोजनसे कोई स्वाद आ रहा है क्या? वह तो नीरस लगता है। प्रत्येक इन्द्रियके विषय अत्यन्त नीरस जंचने लगते हैं। तो ये सम्बन्ध हितकारी नहीं है, ऐसी अपने आपमें प्रतीति रखियेगा।

निर्लेपताकी पूज्यता—हम प्रभुको पूजते हैं, प्रभुका स्वरूप निर्लेप है तभी उनका पूजन किया जा रहा है। यदि वे हम आप जैसे गृहस्थीमें रहते तो उन्हें कौन पूजता? तीर्थकर भी जब तक घरमें रहे, महामण्डलेश्वर राजा बने रहे, वैभवमान् रहे तब तक वे पूज्य नहीं कहलाये थे, जब विरक्त होकर समाधिभावके द्वारा समग्र कलंकोंको नष्ट कर दिया, निर्लेप हो गये तब वे पूज्य कहलाये। तो क्या यह श्रद्धा नहीं है कि भगवान् जैसी अवस्था तो वही परमहितको अवस्था है। है कि नहीं श्रद्धा? श्रद्धा तब समझें जब भगवान् जैसी अवस्था पानेको रुचि जग जाय, अर्थात् सर्वपदार्थोंसे मुक्त होकर केवल ज्ञानानन्दस्वरूप अपने आपको संभालमें अपने आपको लगा दिया जाये तो समझो मोह रागद्वेष परिग्रह नाना आरम्भोंमें व्यासक्त रहें, ऐसी परिस्थिति अपनी बना डाली तो भगवान् को भक्ति नहीं हुई।

यथार्थ उपासनाका ध्यान—भैया! करते न बने चारित्र संयम तो न कीजिये, लेकिन श्रद्धामें तो यह होना चाहिये कि मेरा कल्याण तो सर्व बाह्य पदार्थोंसे देहसे न्यारा रहनेमें है। इस सत्य बातसे मुख न मोड़िये और जब कभी भी इन विषयप्रसंगोंमें कोई विपदा आये, उपद्रव आ जाये तो आखिर इस ही भूल निजतत्त्वके ज्ञानसे वास्तविक सन्तोष मिलेगा सन्तोषका अन्य कोई दूसरा सही उपाय नहीं है। इन बाह्य पदार्थोंको पा पाकर, रख रखकर हम चाहें कि सन्तुष्ट हो जायें तो हो नहीं सकते हैं। अपने आपको जब आकिंचन केवल ज्ञानस्वरूपका निरख सके तो हम संतुष्ट हो सकेंगे। अब जान लीजिये। भगवद्भक्तिका यथार्थ लाभ लीजिये। प्रभुके स्वरूपके चिन्तनमें कोई संकट नहीं रहता। प्रभुभक्तिके प्रसादसे समस्त संकट दूर हो जाते हैं। क्यों दूर हो जाते हैं कि प्रभुभक्तिमें नित्य तत्त्वका

उपयोग रहता है, अविनाशी, चैतन्यस्वरूपका निर्मल ज्ञानस्वभावका उपयोग रहता है। जब तक हम नित्य पदार्थका आश्रय रखेंगे तब तक हमें विडम्बनाएँ नहीं हो सकती हैं।

अनित्यको अनित्य माननेसे खेदका अभाव—जब हम अनित्य पदार्थको नित्य मानते हैं तो हमें विह्वलता होती है, क्योंकि जो अनित्य है वह तो मिटेगा, और यह चाहें कि न मिटे तो यही लक्ष्य हो गया। परपदार्थ मिटते तो नियमसे जा रहे हैं और यहाँ हम चाहते हैं कि न मिटें इसीसे तो क्लेश है। जैसे बच्चे लोग बरसातके दिनोंमें रेतमें भदूना घर बनाने का खेल किया करते हैं। पैरों पर मिट्टी डाल दिया, हाथोंसे खूब थोप दिया फिर धीरेसे पैर निकाल लिया, एक वह घरसा बन जाता है। पर वही बच्चा या और कोई इसको मिटा दे तो वह क्लेश तो नहीं मानता, क्योंकि वह समझ रहा है कि यह तो मिटानेके लिए है, यह तो मिटने ही वाला है, इसे तो हम मिटानेके लिये ही बना रहे हैं। इन मिटते हुए समागमोंको हम मिटता हुआ ही मानता रहें तो वहाँ भी क्लेश नहीं है।

अनित्यको अनित्य माननेसे खेदके अभावपर दृष्टान्त—भैया! और भी देखो, विवाहादिमें जो लोग आतिशबाजी घालते हैं तो आतिशबाजीमें मानो १००) खर्च हो गये तो ये १००) पन्द्रह मिनटमें खर्च हो गये, इन १००) के खत्म हो जानेका कोई खेद लोग नहीं मानते और कोई छोटीसी चीज एक दो रुपयोंकी घंटी अथवा गिलास खो जाय, नष्ट हो जाय तो उसका क्लेश मानते हैं, क्योंकि बारूदके बारेमें उनका यह ख्याल था कि यह तो मिटनेके लिये ही खरीदा गया और उस २) के गिलासमें यह बुद्धि थी कि यह तो बीसों वर्ष रहेगा, बस इस बुद्धिके अन्तरसे १००) के खर्चमें तो दुःख नहीं हो रहा है, लेकिन इस २) के गिलासके गुम जानेसे दुःख हो रहा है। अनित्यको नित्य माना इसलिये उस बड़े खर्चमें दुःख नहीं हुआ और उस गिलासको नित्य मान रहा था, यह सदा रहेगा तो उस प्रसंगमें दुःख होता है। तो दुःखी होना, सुखी होना यह सब कल्पनावों पर निर्भर है।

द्रव्यधर्म व पर्यायधर्म—साधारणरूपसे यह बताया जाता है कि जगतके सभी पदार्थ विनश्वर हैं, नष्ट हो जाने वाले हैं, लेकिन वहाँ यह समझना कि पदार्थ नष्ट नहीं होता, किन्तु पदार्थका परिणमन नष्ट होता है। ये पौद्गलिक ठाटबाट आज जिस शकलमें हैं वह शकल मिट जायेगी, पर पदार्थ मूलसे न मिट जायेगा। जगत्में जितने भी अणु हैं, जितने भी जीव हैं, जितने भी अन्य द्रव्य हैं उन सबमें न कोई एक कम हो सकेगा, न कोई एक ज्यादा हो सकेगा। उस पदार्थमें अनित्यता नहीं है, किन्तु पदार्थके परिणमनमें अनित्यता है। पदार्थसे कौन प्रेम करता है? जो भी प्रेम करता है वह पदार्थके परिणमन से प्रेम करता है।

परमार्थमें रागका अभाव—इन दृश्यमान् अचेतनोमें वास्वविक पदार्थ है परमाणु। एक एक परमाणुसे कौन प्रेम करता है? यह परमाणु बड़ा अच्छा है, यह मुझे मिल गया। अरे परमाणुके तो विकल्प भी नहीं होता। तो परमार्थ तो परमाणु है, उससे कोई प्रेम नहीं करता। उन परमाणुवोंका मिलकर जो यह ठाट बना है, यह मायाजाल है, मिट जाने वाला है। इसी तरह जीवके बारेमें सोच

लो। जीवमें परमार्थ जीव तो जीवत्व तो एक शुद्ध चित्प्रकाश है। शुद्ध चैतन्यस्वभावसे कौन प्रेम करता है? यह चैतन्य बिगड़कर कर्मोंका सम्बंध पाकर जो विकृत बन गया है उसमें लोगोंका प्रेम होता है। यह मेरा भाई है, यह मेरा अमुक है, यह मेरा मित्र है, इस पिण्डपर्यायमें, इस विजातीय द्रव्यपर्यायमें इस भवमें लोगोंका प्रेम व्यवहार चलता है, तो जीवमें तो परमार्थ है शुद्ध चैतन्य प्रकाश, उससे तो कोई मोह नहीं रखता, और इन जीव स्कंधोंमें परमार्थ पदार्थ है परमाणु। उस परमाणुसे भी कोई प्रेम नहीं करता। कोई प्रेम करता है इन्द्रजालसे अथवा मायाजाल से। इन्द्रजाल तो जीवके विकार हैं। मायाजाल ये पुद्गलके विकार हैं। विकारोंसे ही लोगोंको मोह हो रहा है, परमार्थसे जीवको मोह नहीं होता।

अविनाशी तत्त्वकी भावना—अपने आपके बारेमें यह ध्यान लाइये कि प्राणीरूप यह मैं भी विनाशीक हूँ। जो व्यवहार कर रहा है और जिन वस्तुओंसे व्यवहार किया जा रहा है वह पदार्थ भी विनाशीक है। मैं अविनाशी हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ, ऐसी हम बार-बार अपने आपकी भावना बनाएँ, इससे ही हमें सन्तोष प्राप्त होता है। जगत्में जो कुछ होता वह सब भाग्यके अनुकूल होता। बड़े-बड़े बलवान् बड़े-बड़े अधिकारी अभिमानमें चूर अपनी बुद्धि और बलका कौशल भी दिखायें, लेकिन भाग्य प्रतिकूल है तो वहाँ सिद्धि नहीं मिलती। और जो सरल हैं, दंदफंद नहीं मचाते हैं, शान्तिसे रहते हैं, भाग्य उनके अनुकूल है तो उनका कोई बिगाड़ नहीं कर सकता। यह है बाहरी बात, सांसारिक बात। अतः इनका हम अधिक विकल्प न करके पाये हुए इस मनुष्यभवको एक शुद्ध ज्ञानमात्र अनुभव कर करके सफल बनालें तो यही क्लेशसे हटकर आनन्दमें लानेका पुरुषार्थ है। अपने आपमें परमविश्राम पा सकें, एकदर्थ समस्त वैभव को अनित्य समझें और अपने स्वरूपको अविनाशी समझें।

वपुर्विद्धि रुज क्रान्तं जराक्रान्तं च यौवनम्।

ऐश्वर्यं च विनाशान्तं मरणान्तं च जीवितम् ॥५९॥

देहकी रोगाक्रान्ता—हे आत्मन्! तू शरीरको रोगोंसे भरा हुआ समझ और जवानीको बुढ़ापेसे घिरा हुआ समझ, तथा ऐश्वर्य सम्पदाको विनाशीक जान और जीवनको मरणवत् जान। अनित्य भावनाके प्रसंगमें इस श्लोकमें ४ बातों पर प्रकाश डाला है, प्रथम तो इस शरीरको रोगोंसे आक्रान्त समझ, कितनी ही प्रकारके रोग इस शरीरमें हुआ करते हैं। आयुर्वेद शास्त्रोंमें इन रोगोंकी संख्या लाखोंमें बताई है। शरीरमें वात, पित्त, कफ ये तीन धातुयें हैं। जब इनमें विषमता हो जाती है तो अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। शरीर रोगोंसे भरा हुआ ही है। एक भी मनुष्य ऐसा न मिलेगा जिसको किसी प्रकारका रोग न हो, बुखार, जुखाम आदि बड़े रोग न हों, पर जो समझते हैं कि मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ, वे भी किसी न किसी रोगसे भरे हुए हैं। हो सकता है कि कोई स्थायी रोग न हो। प्रतिदिन यह फक्र पड़ जाता है कि सुबह इस शरीरकी कुछ स्थिति है, दोपहरको कुछ स्थिति है, शामको

इस शरीरकी कुछ स्थिति है। जिन्हें हम स्वस्थ समझते हैं, नीरोग जानते हैं ऐसे नीरोग पुरुषके शरीरमें भी एक दिनमें कई स्थितियाँ बन जाया करती हैं।

अनित्य शरीरकी अप्रेयता—हे आत्मन्! जिस शरीरको देखकर तुझे अभिमान उत्पन्न होता है उस शरीरको तू रोगोंसे घिरा हुआ जान। यह शरीर प्रेमके योग्य नहीं है, रोगोंसे घिरा हुआ है। यह शरीर अनित्य है। अनित्यके दो अर्थ हैं, एक अर्थ तो यह है कि यह नष्ट हो जायेगा। जब शरीर रोगोंसे व्याप्ता बनानेका भाव यह है कि शरीर विनाशीक है। अनित्यका दूसरा अर्थ यह है कि यह शरीर प्रतिक्षण अपनी स्थितियाँ बदलता रहता है। सुबह कैसा शरीर, शामको कैसा शरीर है? उसमें अन्तर हो जाया करता है। रोज ही यह अनित्य है और अन्तमें इसका विनाश भी है। ऐसे विनाशीक रोगी, असार शरीरसे प्रीति मत करो, तू अपने स्वभावका स्मरण करके अपने स्वभावमें रति करो।

यौवनकी जराक्रान्ता—इस श्लोकमें दूसरी बात कही गई है कि यह जवानी बुढ़ापेसे आक्रान्त है। जवानी सदा बनी रहे ऐसा कोई मनुष्य नहीं देखा होगा। जवानी निखरती है, बुढ़ापा आता है। जवानीके बाद बचपन आया करता है क्या? मरण न हो तो जवानीके बाद बुढ़ापा ही आया करता है। इस शरीरका नामशरीर क्यों है? शीर्यते इति शरीरम्। जो शीर्ण हो जाय, छिन्न-भिन्न हो जाय उसका नाम शरीर। तो शरीर शब्द ही यह बतलाता है कि ये छिन्न भिन्न हो जायेगा, और शरीरमें धातुवोंकी प्रबलता रहना, रक्त, मांस आदिक पुष्ट रहना इसका ही नाम जवानी है। तो जवानी बुढ़ापेसे घिरी हुई होती है।

ऐश्वर्यकी विनाशान्ता—यहाँ तीसरी बात कही गई है कि ऐश्वर्य विनाशान्त होता जिसको जो वैभव मिला है उस सबका विनाश होना है। आज पुराण और इतिहासोंमें देख लो, जिनके पास जो वैभव था, न वह वैभव रहा और न वे खुद रहे। जिनके पास बड़ा ऐश्वर्य था, बड़ा वैभव था वह सब विनष्ट हो गया। तो जो भी जिसको मिला है वह नियमसे बिछुड़ेगा। जो बिछुड़ जाये वह मिले अथवा न मिले, पर जो मिला है वह नियमसे बिछुड़ेगा। ऐश्वर्य मिला है, सम्पदाका समागम हुआ है तो जरूर नष्ट होगा। चाहे अपने जीते जी यह नष्ट हो जाय, खुद ही मर जाय तो यों वियोग हो जाय। किसी भी प्रकारसे वियोग हो, पर यह नियम है कि जिन पदार्थोंका संयोग हुआ है उसका नियमसे वियोग होगा।

जीवनकी मरणान्ता—चौथी बात कही गई है कि यह जीवन मरणान्त है अर्थात् इसका निकट मरण है। किसका जीवन ऐसा हुआ कि वह जीता ही रहा, मरा कभी नहीं अथवा मरेगा कभी नहीं? अरे जीवन मरण सन्मुख ही हुआ करते हैं। मरणके बाद जीवन हो या न हो इसका कोई नियम नहीं है। संसारी जीवोंके मरणके बाद जीवन होता रहता है, किन्तु अयोगकेवली भगवानके मरण अर्थात् आयुके विनाशके बाद फिर जीवन नहीं मिलता। पर जीवनके बाद मरण नियमसे हुआ करता है। इस ओर दृढ़ नियम है।

विनाशीक पदार्थोंमें राग न करनेका कर्तव्य—यह संसारी प्राणी इन चार प्रकारकी बातोंमें आसक्त होकर अहंकारी और बेसुध बने हुए हैं। शरीरमें अति तीव्र ममता है। जवानी आये तो उस शरीरको निरख-निरखकर भी आप चित्तमें खुश रहा करते हैं, ऐश्वर्य पायें तो उसका भी बड़ा गर्व रहा करता है और जीवनकी तो तीव्र अभिलाषा रहा ही करती है। आचार्यदेव कह रहे हैं कि ये चारोंके चारों पदार्थ विनाशीक हैं। नष्ट होने वाले पदार्थोंमें राग मोह मत करो।

**ये दृष्टिपथमायाताः पदार्थाः पुण्यमूर्तयः।
पूर्वाह्न न च मध्याह्ने ते प्रयान्तीह देहिनाम् ॥६०॥**

वैभवोंकी क्षणिकता—इस संसारमें जो भी बड़े उत्तमोत्तम पदार्थ दृष्टिमें आते हैं वे पूर्वाह्नमें हैं तो मध्याह्नमें नहीं हैं। प्रभातके समय कोई पदार्थ दिखता था, दोपहर कालमें वह पदार्थ नष्ट हो जाता है। किसीके बालक हुआ, पूर्वाह्नकालमें खुशी मनायी और मध्याह्नकालमें नहीं रहा तो उसके घरमें रंज छा जाता है। पूर्वाह्नकालमें श्री रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक होनेको था, थोड़ेही समय बाद क्यासे क्या घटना बनती है कि वे अयोध्याको भी छोड़कर जंगलमें चले जाते हैं। कितने ही सुख कभी आयें, कुछ ही समय बाद वे खिर जाते हैं।

**यज्जन्मनि सुखं मूढ! यच्च दुःखं पुरः स्थितम्।
तयोर्दुःखमनन्तं स्यात्तुलायां कल्प्यमानयोः ॥६१॥**

सांसारिक सुखसे अनन्त गुणा दुःख—हे मूढ पुरुष! इस संसारमें तेरे समक्ष जो कुछ सुख या दुःख हैं उन दोनोंको ज्ञानकी तराजूमें चढ़ाकर यदि तौलेगा तो सुखसे दुःख अनन्त गुणा अधिक दीखेगा। इस श्लोकमें यह बताया है कि संसारमें सुख तो है तिलभर और दुःख है पहाड़भर। अपनी-अपनी बात ही अपनेको जल्दी समझमें आयेगी। दूसरेका सुख दुःख समझमें नहीं आता। तब अपनी ही बात अपने पर घटाकर देखलो। किसी भी प्रसंगमें, किसी भी समयमें सुख आपकी कल्पनामें है तो उसके साथ उससे अनन्तगुणा दुःख भी लगा हुआ है। यह क्यों? इसलिये कि वे तो सारे दुःखके ही काम हैं। इतने पर भी यह मूर्ख प्राणी मोहवश उसमें सुखकी कल्पना कर डालता है तो यह उसके कल्पनागृहकी बात है। वास्तवमें सुखसे अनन्तगुणा दुःख है। यह कहनेके बजाय सर्वत्र दुःख ही दुःख है, यह कहा जाना चाहिये था, लेकिन जिन्हें समझाना है उनकी कल्पनामें तो वह सुख जंचता है, जो कि दुःखस्वरूप है, अतः उन्हें उनकी भाषा बोलकर ही तो समझाना पड़ता है। इस कारण यह कहा गया कि संसारमें जितने सुख हैं उससे अनन्तगुणा दुःख है।

धनके कल्पित सुखमें दुःखोंका उपचय—अच्छा कोईसा भी प्रसंग ले लो किसमें सुत्र मानते हो? धन वैभव जोड़नेमें सुख मानते हो तो धन वैभव जोड़नेकी कल्पनावोंसे जो सुख मानते हो तो उस प्रसंगमें उससे कई गुणा अन्य बातोंका दुःख है। कहीं कोई विरुद्ध कानून न बन जाय, कहीं इस दबे

हुए धनको कोई जान न ले, कहीं कोई चुरा न ले, कितनी ही प्रकारकी कल्पनाएँ बनती हैं। उस सम्बंधमें जो भी विकल्प बनते हैं उन विकल्पोंको वचनोंसे कहा नहीं जा सकत। वे विकल्प अनुभवमें तो हैं पर उनका वर्णन वचनोंसे किया जाना शक्य नहीं है। सारा संसार दुःखपूर्ण है। संसारकी प्रत्येक परिस्थिति पूर्ण दुःखमय है।

वाञ्छाओंमें ही सुख-दुःखकी कल्पना—किसीको १०४ डिग्री बुखार चढ़ा था और अब रह गया १०२ डिग्री, अब उससे पूछा जाय कि कहो भाई कैसी तबियत है? तो वह तो यही उत्तर देता है कि अब तो तबियत अच्छी है। अरे अभी कहाँ अच्छी है, अभी तो तीन डिग्री बुखार चढ़ा हुआ है लेकिन बड़ा दुःख जो अभी निकटमें भोगा था उसके मुकाबलेमें कुछ कम है, अतएव उसे सुखमें ले लिया है। ऐसे ही वाञ्छायें ही विपदा है अब इच्छायें अनेक हुआ करती हैं। बस उन्हीं इच्छाओंमें से जब अति पराधीन बातोंकी इच्छा नहीं रही है, कुछ निकट प्राप्यवस्तुकी इच्छा जगती है तो यह जीव उसमें सुख मान लेता है। इच्छाओंमें ही दुःख मानता है और इच्छाओंमें ही सुख मानता है। जैसे उस बीमार पुरुषने बुखारमें ही खराब तबियत बतायी थी और बुखारमें ही अच्छी तबियत बतायी, ऐसे ही इच्छाओंका उपद्रव प्रत्येक संसारी जीवमें पड़ा हुआ है, जिसको संज्ञाके नामसे कहते हैं। आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसंज्ञा। जैनाचार्यों ने इन चार संज्ञाओंको अतिज्वर बताया है। चार संज्ञाओंरूपी जड़से पीड़ित हुए ये प्राणी विकल हो रहे हैं।

मूढ़ता—हे मूढ़ प्राणी! यहाँ मूढ़से सम्बोधन किया है। मूढ़ शब्द सुनकर बुरासा लगता होगा। यदि आपको कोई कह दे कि आप बड़े मूढ़ हो तो आप बुरा मान जायेंगे और मूढ़का ही पर्यायवाची शब्द है मोही। आप बहुतअ मोही हैं इस बातको सुनकर आप उतना बुरा न मानोगे; जितना कि मूढ़ शब्द सुनकर बुरा मानोगे। बल्कि कभी-कभी तो मोही शब्द सुनकर आप हर्ष मानेंगे, जैसे कोई कहे कि आपको तो अपनी नातीसे बड़ी मोहब्बत है तो इसका सुनकर आप खुश हो जाते हैं। अरे मूलमें कहा तो गया मूढ़ ही। व्यक्त शब्दोंमें कहा यह गया कि तुम्हें अपने नातीसे बड़ा मोह है, तो इस बातको सुनकर आप अपनी प्रशंसा मान लेते हैं और यदि यह कहा जाय कि बाबा जी आप तो बड़े मूढ़ हैं तो इस बातको सुनकर आप दुःख मानेंगे। पर मूढ़का अर्थ है परवस्तुमें व्यामोह होना। जिसे परवस्तुमें व्यामोह है उस पुरुषका नाम मूढ़ है।

सुखकी अरम्यता—देखो इस संसारकी किसी भी वस्तुमें मग्न मत हो तो वह सुख नहीं है, दुःख है। इन सारे दुःखपटलोंको भेदकर, बिखरा कर अन्तः बसे हुए आत्मीय सहज परमआनन्दमय इस स्वरूपपर नजर डालो, यही है वास्तविक सुख। इससे बाहर कहीं विश्वास मत करो। यह मेरा है, यह पराया है, ऐसी मिथ्या श्रद्धा मत करो। यह भी पराया है यह भी पराया है। जो कुछ मिला है यह भी पर है। श्रद्धा सही रक्खो। अपना भविष्य अपने आप पर निर्भर है। हम जिस ओर मुख करेंगे उस ओर वैसा ही बात हम पर गुजरेगी। एक निर्णय कर लो, सब कुछ क्लेश है। बड़े क्लेशके सामने

छोटे क्लेशसे सुख मान लेना यह तो कल्पनाकी बात है, पर मूलसे स्वरूपको देखो तो सब कुछ कल्पनायें हैं।

खानेका उपद्रव—देखो भैया! गजबकी बात खाने पीनेको मौज माना जाता है और यह स्वाद किस जगहसे आता है? यह कुछ पकड़में बात नहीं आती। जब खाते हैं तो सारी जीभसे तो स्वाद आता नहीं, यह जीभ करीब एक बेधाकी होगी, लेकिन अन्यत्र इस सारी जीभभर कोई चीज रख दो तो स्वाद नहीं आता और एक जरासी नोक है वह जहाँ छू जाय, बस सो ही गड़बड़ पैदा करती है। यह स्वाद कहाँसे आ जाता है, किस ढंगसे आता है तो खाना ही दुःख है उसका सुख क्या मानें? न जाने कब कैसा शरीर मिले, न जाने कब कैसा खानेको मिले? नरक शरीर मिले तो भूख तो लगती है सबसे अधिक और खानेको दाना भी नहीं मिलता। इस खानेका सुख माननेसे खानेके निदानभूत विविध देह मिलते रहते हैं। खाना भी उपद्रव है। आहारसे रहित हो जाय यह जीव बस इसमें ही आनन्द है आहारमें आनन्द नहीं है।

संबोधन—इस मनको बहुत समझाना पड़ेगा। यों ही आरामसे धर्म न मिल जायेगा। धर्म तो आरामसे ही मिलेगा, पर संसारी जीवोंने जिस काममें आराम समझ रक्खा है उस काममें सुख न मिलेगा। मनका संयमन करो, इन्द्रियोंका दमन करो, जो बात इस आत्माके हितके लिये होती हो उस पर दृष्टि दो। हे प्रियतम! अपने आप पर दया कर के श्रद्धा सही बना लो। श्रद्धा निर्मल होनी चाहिये। अंतस्तत्त्वका रुचिया ज्ञानी संत अपने आपके सम्बंधमें यों निरख रहा है कि जो मैं ज्ञान कर रहा हूँ। जो एक ज्ञानरूप बन रहा है वह एक जाननस्वरूप है ऐसा यह भावात्मक मैं चेतन केवल एक प्रतिभासस्वरूप हूँ, इसमें अन्य कुछ भी दंद फंद नहीं हैं। न इनमें किसी परवस्तुका लेप है। व्यवहार दृष्टिसे लेप है, किन्तु वह निमित्तनैमित्तिक बन्धनरूप है, न कि मेरे स्वरूपसे किसी वस्तु का स्वरूप लिया गया है। मैं सदैव अपने स्वरूपमात्र हूँ, ऐसे निज विचारसे इस ज्ञानीके अंतस्तत्त्वमें रुचि दृढ़ हुई है। इसके दर्शनमें आनन्द है। इसके सिवाय अन्य कुछ विकल्प में आनन्द नहीं है।

प्रत्येक सांसारिक स्थितिमें दुःखकी कल्पना—हे भाई! तू संसारके सुखोंको तौलकर देख। जिनके संतान नहीं है वे इस बातसे दुःखी होते कि मेरे संतान नहीं है, मेरा घर सूना है, घरमें दीपक कौन जलायेगा और जिनके संतान हैं वे संतानके कारण दुःखी रहते हैं। दिन भरमें पचासों बार उन संतानोंपर झुंझलाते हैं। कभी-कभी तो झुंझलाहट प्रकट हो जाती है और कभी दिल मसोसकर रह जाते हैं, पर पचासों बार जरा जरासी बातोंमें उन संतानों पर झुंझलाते हैं। और न भी कुछ हो तो रागकी वासनासे यों ही क्षुब्ध हुआ करते हैं। सर्वत्र दुःखी होकर यह जीव बरबाद हो रहा है। संसारमें कौनसा सुत्र है जो सुख कहलाये? उसके साथ अनन्तगुणा दुःख भी लगा हुआ है। जैसे कोई साधारणसी मोटरगाड़ी होती है तो उससे कभी बड़ा सुख मानते हैं, सीटपर बैठे हैं। पों-पों करते चले जा रहे हैं और कहीं रास्तेमें बिगड़ गई तो सोचते हैं ओह! इसमें तो बड़ा जंजाल है, बड़ा दुःख है। ऐसी बातें

अनेक बार होती हैं। यों ही यह बिगड़ी हुई गाड़ी है संसारी जीवकी। कुछ थोड़ीसी चल उठी, सुख मान लिया, और पचासों बार बिगड़ते हैं, उसमें क्लेश मानते हैं।

आंतरिक आंधियाँ—खूब विचार लो, संसारकी किस परिस्थितिमें सुख है? कुछ भी आरामके लिये साधन बनाए जावें, कुछ भी सुखपूर्वक रहनेकी स्थिति बनाई जाये उसके साथमें ही कितना दुःख लगा हुआ है, लोगोंको दिखता है ऐसा कि फलाने साहबका कमरा बैठका बड़ा सजा-धजा है। नये-नये तरहकी कुर्सियाँ पड़ी हैं, नये-नये प्रकारके टेबुल हैं, अच्छे-अच्छे चित्रोंकी सजावट है, ये बड़े सुखसे रहते होंगे। अरे वह पुरुष कितना दुःख भोगकर, कितने विकल्प बनाकर, कितने कष्ट सहकर उस कमरेमें बैठा है? चाहे गद्देदार कुर्सियों पर भी पड़ा हो, पर यह नहीं कहा जा सकता कि इसके चित्तमें सुख है। वेदनायें वहाँ भी चल रही हैं। इस संसारमें अगर सुख होता तो तीर्थकर जैसे महापुरुष इसे क्यों त्यागते, क्यों संयम धारण करते? ये सारी चीजें मायामय हैं, त्यागने योग्य हैं। एक श्रद्धा तो सही बना लो और उस पर कुछ प्रयोग करो।

परोपकारमें तन-मनके प्रयोगका अनुरोध—शरीर पाया है तो लगने दो परोपकार में। दूसरोंके उपकारसे इस शरीरका कुछ नहीं बिगड़ता और बिगड़ जाये तो क्या हुआ, बिगड़ना तो है ही। हम अपने भावोंमें उज्ज्वलता बसायें, इस अवसरको पाकर अब न चुकें। अब जीवोंको सुख हो, शान्ति हो इस प्रकारका चिन्तन करें। हमारा कोई न साथी है, न शत्रु है, जिन्हें यहाँ साथी और द्वेषी समझा जा रहा है। वे बेचारे अपने सुखके लिये, अपने कषायोंकी शान्तिके लिये अपने आपमें जैसा उन्होंने सुख मान रक्खा हो उस तरहके उनमें विकल्प पैदा होते हैं। तो कोई साथी अथवा द्वेषी कैसे होगा? जगत्में कोई किसीका साथी अथवा द्वेषी नहीं है। ज्ञानी गृहस्थके चित्तमें भी कितनी उदारता है कि युद्धके समय व्यवहारमें शत्रुका डटकर मुकाबला करते हुए भी अन्तरंगमें यह श्रद्धा बनी है कि कोई मेरा शत्रु नहीं है। यह मन पाया है तो इस मनको सब जीवोंकी भलाईके चिन्तनमें लगा दो, कोई भी हो, दूसरोंके प्रति भला विचारनेसे उसका कुछ भी बिगड़ता नहीं है, किन्तु मन खुश रहता है।

परोपकारमें धन वचनके प्रयोगका अनुरोध—धन मिला है तो परोपकारमें इसे लगा दो। जैसे अपने घरमें किसी भी प्रकारका खर्च आ जाये, उस खर्चके प्रति आप चिन्ता नहीं करते, यह तो हमें करना ही है ऐसा आप सोचते हैं, इस ही प्रकार कोई परोपकार का कार्य आये तो यह तो करना ही है, कर्तव्य है, इसमें भी कुछ बिगाड़ नहीं है, बल्कि धन पकड़े रहनेसे बिगाड़ हैं यह वैभव तो पुण्योदयके कारण आता है और इस पुण्योदय का कारण है परिणामोंकी उदारता, निर्मलता निर्मोहता ऐसे ही वचनोंकी बात देखिये। ये वचन परोपकारमें लगते हैं तो लगावो, हितपरिमित मिष्ट वचन बोलकर जगत्का उपकार करो। इसमें तेरा क्या बिगाड़ है? देख जीभ कितनी कोमल है, जितने भी शरीरके अंग हैं सभीसे कोमल है, पर जब मिथ्या आशय होता है, हृदयमें क्रूरता होती है तो इतनी कोमल जिह्वा जिससे कठोर वचन निकलते हैं। देखो भैया! सुनो ज्यादा और बोलो कम। देखो कान

तो दो मिले हैं और जीभ एक ही है, सो सुननेका डबल काम करो और सुननेसे आधा काम बोलने का। जो कुछ मिला है यह सब परोपकारमें लगे, अथवा अपने आपमें सदाचरण, सत् श्रद्धान् सद्बुद्ध्यानेमें लगता हो तो ठीक है।

सद्बुद्धिकी अभीष्टता—इस संसारमें सुख जिस-जिस बातमें माना जाता है उससे अनंतगुणा दुःख उस प्रसंगमें है और यह तो सब लोगोंको अपने आपके अनुभवमें आया हुआ होगा। तब क्या करना? इस सुखका विश्वास न करें। इस संसारके समागमोंमें यह मेरा है, इस प्रकारका भाव न बनायें। यदि ऐसा भाव बन गया तो इसका घोर दुःख खुदको ही सहना पड़ेगा। सबसे निर्मल केवल ज्ञानप्रकाशमात्र मैं हूँ ऐसी श्रद्धा बनावो। भगवान्से कुछ माँगो तो यह माँगो कि हे नाथ! मेरे ऐसी सद्बुद्धि बनी रहे कि मेरा जो पारमार्थिक यथार्थ स्वरूप है उसको मैं पहिचानता रहूँ, इतनी सद्बुद्धि पैदा हो, इसके अतिरिक्त हम कुछ नहीं चाहते हैं, यही है चीज प्रभुसे मांगनेकी। प्रभु हैं खुद ऐसे। जो जैसा होता है उससे उस बातकी आशा की जा सकती है। यद्यपि यहाँ प्रभुसे मिल जाये सद्बुद्धि सो ऐसी सीधी बात नहीं है, किन्तु निज ज्ञानके भण्डार प्रभुस्वरूपका चिन्तन करनेसे अपने आपमें चूँकि यह भी सच्चे ज्ञानका भण्डार है स्वरूपमें अतएव स्वयं सद्बुद्धि प्रकट हो जाती है। यही अभिलाषा करो कि हे नाथ! मुझमें ऐसी सुबुद्धि उत्पन्न हो। यही सद्बुद्धि सब कुछ उपाय बना देगी। जिन उपायोंसे जीवको कल्याण प्राप्त होता है।

भोगा भुजङ्गभोगाभाः सद्यः प्राणापहारिणः।

सेव्यमानाः प्रजायन्ते संसारे त्रिदशैरपि ॥६२॥

भोगोंकी अहिनकारिता पर सर्पफणका उदाहरण—इस संसारमें भोग सर्पके फणके समान हैं क्योंकि इन भोगोंका सेवन करते हुए देवता लोग भी शीघ्र प्राणांत हो जाते हैं। देव भी भोगोंमें रमकर अपने व्यतीत होने वाले समयको नहीं जानते। वह सागरोंका समय भोगोंमें ही रमकर व्यतीत हो जाता है। देवगतिमें जीव मरकर एकेन्द्रियमें पैदा हो या पञ्चेन्द्रियमें पैदा हो, अन्यत्र पैदा नहीं होता। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय जीवोंमें विकलत्रयोंमें ये उत्पन्न नहीं होते। कितनी विलक्षण बात है? या तो वे भले मन वाले संज्ञीपञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च या मनुष्य हों और या एकदम एकेन्द्रियमें पैदा हों। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पतिमें पैदा हो जायें। तो जो देव मिथ्यादृष्टि हैं, देवियोंमें ही आसक्त हैं, वे भोगोंमें रमकर एकेन्द्रिय भी हो जाते हैं। तब है ना सही बात कि ये भोग सर्पके समान हैं। सर्प सामनेसे निकल आये तो अभी भगदड़ मच जाए, सर्पकी बात छोड़ दो, अभी किसी कोनेसे कोई चुहिया निकल पड़े तो लोग डर जाते हैं। लोगोंको शंका हो जाती कि अरे क्या है?

भोग परिहारकी शिक्षा—यह सर्प कितना भयंकर है, उस सर्पके फणसे भी अधिक भयंकर ये इन्द्रिय विषयोंके भोग हैं, इनकी ओर रंच भी दृष्टि न जाय और ज्ञानकी आराधनामें समय व्यतीत हो, ऐसी चर्यामें ही लाभ है। इन भोगोंके आकर्षणमें आदिसे अन्त तक बरबादी ही बरबादी है, इस

कारण हे मुमुक्षु पुरुषों! जब देव तक भी भोगोंमें रमकर मरकर एकेन्द्रिय तक हो जाते हैं तो मनुष्योंकी तो सारी योनियां खुली हुई हैं। ये मरकर नारकादिक गतियोंमें नहीं जायेंगे क्या? भोगोंमें रमना, मरना। रमका उल्टा मर। भोगोंमें रमे और मरे। ये भोग इस जीवके लिये हितकारी नहीं है और इतनी ही बात नहीं कह रहे, सारे समागमोंमें यही विश्वास रखो कि ये मुझसे अत्यन्त न्यारे हैं। यह बात हृदयमें जमे बिना, श्रद्धा आये बिना कल्याण नहीं हो सकता।

वस्तुजातमिदं मूढं प्रतिक्षणं विनश्वरम्।

जानन्नपि न जानासि ग्रहः कोऽयमनौषधः ॥६३॥

अनित्यको अनित्य माननेसे व्याकुलताका अभाव—हे मूढ पुरुष! यह प्रत्यक्ष अनुभव में आता है कि इस संसारमें जो पर्यायोंका समूह है सो वह पर्यायोंकी दृष्टिसे क्षण-क्षणमें नष्ट होने वाला है। इस बातको तू जानकर भी अज्ञानी हो रहा है। यह तेरी कैसी हठ है? क्या तुझ पर कोई पिशाच चढ़ गया है जिसका कि कुछ इलाज ही नहीं होता? अनित्य पदार्थको नित्य माननेका अज्ञान इस जीव पर लगा है सो यह दुःखी होता है। अचानक चोट पहुँचती है अरे क्या हुआ यह? अरे उस पदार्थको पहिलेसे ही ऐसा निश्चित रखिये, निर्णयमें रखिये कि जो कुछ यह मायारूप है यह सब विनष्ट हो जायेगा, ऐसा निर्णय रहे तो नष्ट होते समय इसे क्लेश नहीं होता।

मोहियोंका वियोगका क्लेश—अहो ऐसा मोह छाया हुआ है विकट कि घरका आदमी बूढ़ा भी हो गया तो क्या वह बूढ़ा भी कभी मरेगा नहीं, पर उस इस मोही वृद्धके भी वियोगकालमें बड़ा ठेस पहुँता है, जिसको जिससे जितनी प्रीति है उसके वियोगमें उसे उतना ही कष्ट मिलता है। सो क्या ऐसी बातको तू जानता नहीं है? जानता तो होगा। हम आप क्या यह जानते नहीं कि मरण नियमसे होगा? अपने मरणकी बात नहीं सोच पाते। दूसरोंको एक निगाहसे देख डालें तो दूसरों पर यह बात बड़ी जल्दी समझमें आयेगी कि हाँ ठीक तो है, जो जीवित होता है उस नियमसे मरता है, पर इसी बातको खुद पर घटानेके लिये मुश्किल जंचता है। यह जानता हुआ भी नहीं जानता ऐसा कोई निरूपाय इसके गृह लग गया है।

कदाचित् महापुरुषोंको भी वियोगका खेद—बड़े-बड़े इतिहास और पुराणोंमें भी ऐसा सुना गया है कि बड़े-बड़े पुरुषोंने भी वियोगकालमें बड़ा खेद माना था। नारायणके वियोगमें बलभद्रने कितना खेद माना था, वैसी मिसाल तो यहाँ भी कहीं मिल नहीं पाती। श्री कृष्णके मरण पर श्री बलदेव कितने तड़फे थे? श्री लक्ष्मणजी के वियोग पर श्री रामचन्द्रजी ने अपनी क्या स्थिति बना ली थी? यह राग पिशाच इस जीवको बुरी तरहसे चोट पहुँचाता है। सम्यग्दृष्टि पुरुष भी जब रागका तीव्र उदय आये तो कुछ विवशसे होकर ऐसी चेष्टायें करने लगते हैं कि लोग यों कह उठें—ऐसा तो सामान्यजन भी नहीं कर सकता। रागीकी वेदना बड़ी प्रबल वेदना होती है। द्वेषकी वेदनासे भी प्रबल

वेदना रागकी होती है। हाँ रागपूर्वक जो द्वेष हो रहा है उसमें भी तीव्र वेदना होती है, वह वेदना भी रागसे समझिये।

विनाशीक पदार्थोंमें ही रागका सम्बन्ध—जिन वस्तुओंमें यह जीव राग करता है वे समस्त पदार्थ विनाशीक हैं, अविनाशी तत्त्वमें कौन राग करता है? करके दिखावो। आपमें अविनाशी तत्त्व है चैतन्यस्वभाव। अनादि अनन्त शाश्वत एकस्वरूप शक्तिमात्र जो एक प्रतिभास शक्ति है वह है अविनाशी तत्त्व। किसमें राग करनेकी मनमें ठानी है? जो राग करता है वह कषायवान् पुरुषोंसे रोग करता है। चित्स्वरूपसे कौन राग करता है? तो जगत्में मित्रता है कषाय की। कषायसे कषाय मिल गई लो मित्रता हो गयी। तो यह मित्रता भी कषायसे की जा रही है। चित्स्वभावसे मित्रता कोई नहीं करता। चित्स्वभाव तो अविनाशी तत्त्व है, उससे कोई प्रीति करे तो सारा काम ही न बन जाय। यहाँ तो जो दृश्यमान पदार्थ हैं उनमें इस जीवका रागभाव पहुँचता है। इन स्कंधोंमें जो परमार्थ तत्त्व हैं परमाणु, उस परमाणुसे कौन राग किया करता है? हाय यह परमाणु मेरा है, बड़ा अच्छा है मुझसे कहीं न जाय। अरे परमाणु टिकता तक भी नहीं है, किसी से बंधता तक भी नहीं है। परमाणुसे कोई प्रीति नहीं करता। विनाशीक पदार्थोंमें यह जीव राग किया करता है। विनाशीक पदार्थोंमें राग करनेका फल उत्तम नहीं है। संसार को बढ़ाने वाला है और आकुलित रखने वाला है।

क्षणिकत्वं वदन्त्यार्या घटीघातेन भूभृताम्।

क्रियतामात्मनः श्रेयो गतेयं नागमिष्य त ॥६४॥

क्षणिकत्वकी घोषणा—बड़े-बड़े लोगोंके घर दरबारोंमें मंदिरमें जो घंटा बजता है अथवा घड़ीका घंटा बजता है वह शब्द करता हुआ लोगोंको यह बता रहा है कि सबका सब क्षणिक है। जो जिस घंटेका समय निकल गया वह अब वापिस नहीं आनेका है, ऐसे ही जो जीवन व्यतीत हो गया वह अब वापिस लौटकर न आयेगा। पदार्थका जो परिणमन निकल गया वह पुनः न आयेगा। जो पदार्थ है उसका नियमसे विनाश होगा और जिसका नाश हो गया वह पर्याय फिर लौटकर नहीं आती। दूसरी पर्याय आयेगी। यों सभी पदार्थ क्षणिक हैं ऐसा आचार्य पुरुष कहते हैं। तो यह घंटीका शब्द मानो पुकारकर कह रहा है कि हे जगत्के जीवों! यदि कुछ अपना कल्याण करना चाहते हो तो शीघ्र करलो। जो समय गुजर जाता है वह समय पुनः वापिस नहीं आया करता।

व्यतीत कालकी अप्राप्ति—भैया! बीती हुई बलाका तो तुम्हें भी ध्यान ही होगा। जो पीरियड गुजर गया वह पुनः वापिस नहीं आता। प्रायः करके ऐसा होता है कि जब बचपन है तब याद करनेकी शक्ति अधिक होती है लेकिन बचपनमें पढ़नेके प्रति मन नहीं लगता। खेलोंकी ओर चित्त जाता है। बचपनमें थोड़ासा देख लेने पर ही विद्या कंठस्थ हो जाती थी। वह बचपनका समय तो प्रमादमें खो दिया। उस बचपनकी अवस्थासे कोई लाभ न उठा पाया और जब बड़े हुए, विद्याके चमत्कारी समझ बनी, जो कुछ है सो विद्या है, सो अब तड़फता है कि देखो मैंने बचपनमें विद्या सीखनेका यत्न नहीं किया।

सरलता कर्मठता व विवेक—यदि बचपनकी सरलता, जवानीका बल और बुढ़ापेका विवेक ये तीनों बातें एक साथी किसी मनुष्यमें आ जाये तो वही मनुष्य तो महापुरुष है। बच्चोंमें सरलता अधिक है, इस कारण उनकी बुद्धि भी स्वच्छ रहती है और बहुत ही जल्दी उन्हें याद हो जाता है। अन्यथा फक्र बतलावो जवान होने पर तो बच्चेसे कई गुणाबल मिला है ना। बच्चे तो अनेक बातोंको तरसते रहते हैं, बचपनमें किसी पर कुछ अधिकार नहीं रहता। कोई भी उसे डाट डपट देता है। जो उस बच्चेको खिलानेके लिये नौकर रखा गया है वह भी उसे कभी-कभी धमका देता है। उससे उस बच्चेको क्या क्लेश नहीं उत्पन्न होता है? क्या उस बच्चेके अन्दर यह भावना नहीं जगती कि हम भी ऐसे बड़े होते तो यह क्यों मुझे धुधकारता? कितना बचपनमें कष्ट है, पराधीनता है। सब कुछ होकर भी विद्याभ्यासमें उन्हें सफलता क्यों मिल जाती है? बड़े होने पर तो बुद्धि बढ़ी, विवेक बढ़ा पर वह स्मरण शक्ति कहाँ चली जाती है। यह स्मरण शक्ति मायाजाल, आसक्ति, रागभाव इनकी प्रमुखतामें समाप्त हो जाती है। बच्चोंमें सरलता है इस कारण उनकी बुद्धि प्रबल रहती है। बचपनकी सरलता, जवानीका बल कर्मठता और बुढ़ापेका अनुभव, ये तीन बातें किसी एक पुरुषमें आ जायें तो वह पुरुष महनीय हो जाता है। ये समस्त पदार्थ विनाशीक हैं, इनमें प्रीति न करके अपने आत्माका कल्याण करना हो तो इन सबको यों जानो कि ये सब नष्ट होने वाले हैं, चले जानेके बाद फिर नहीं आते।

**यद्यपूर्व शरीरं स्याद्यदि वात्यन्तशाश्वतम्।
युज्यते हि तदा कर्तुमस्यार्थं कर्म निन्दितम् ॥६५॥**

शीर्यमाण शरीरके लिये मोहियोंकी निन्द्यवृत्ति—यह प्राणी इस शरीरके लिये बड़े-बड़े निन्दनीय कर्म भी करनेमें लग जाता है। निद्यकर्म क्या हैं? पञ्चेन्द्रिय और मनके विषयोंमें आसक्त होना, प्रवृत्ति करना और इन विषयसाधनोंकी पूर्तिके लिये इन विषयोंके बाधक जिन्हें मान लिया है उन लोगोंको सताना, उनका घात करना, ये सब कार्य इस शरीरके लिये यह प्राणी कर रहा है। जो शरीर मिट जायेगा, जल जायेगा, जो मायाजाल है, मिलकर एक शक्त बनी है, जिसमें कुछ सार बात भी नहीं है ऐसे इस शरीरके लिए भी लोग निंघ कर्म करते हैं। यदि यह शरीर अपूर्व होता, अनुपम होता, ऐसा कभी न मिलेगा, यदि ऐसा होता और साथ ही यह शाश्वत होता, सदा रहने वाला होता तो चलो निंघ भी कर्म इस शरीरके लिये कर जायें, क्योंकि यह अपूर्व मिला और सदा रहनेवाला है, लेकिन इस शरीरमें तो कुछ भी विशेषता नहीं है। न तो यह अपूर्व है, न जाने कितने शरीर ऐसे धारण किये जिनका अन्त नहीं, गिनती नहीं और यह शरीर सदा रहने वाला भी नहीं। प्रथम तो आयुके क्षयके समय यह शरीर विघट जाता है, फिर एक ही दिनमें यह शरीर कितने ही ढंग बदलता है। न तो यह शाश्वत है। फिर इसके अर्थ निंघनीय कर्म करना क्या योग्य है?

निन्द्य शरीरके लिये विकल्प बननेकी व्यर्थता—भैया! इस निंघ शरीरके लिये कुछ कल्पनाएँ मत बढ़ावो और सम्यग्ज्ञानका प्रकाश पाकर इन सब जड़ोंको हटाकर निजमें अपने आपके प्रकाशको

समा दो। कोई विकल्प न रहे, ऐसी स्थिति बनानेका प्रयत्न करो। इस शरीरके लिये मत दौड़ो भागो, श्रम करो। देखो तो अज्ञानवशी कैसे-कैसे मोही मनुष्य पाये जाते हैं, कैसा शरीरको संभाले हैं? एक घटमें नहाना बने, अब साबुन लगा, फिर तेल लगा, फिर दो-दो, चार-चार बार नहानेकी पद्धतियां भी अनेक नलसे नहायें, फव्वारेसे नहायें, पानी भर कर टंकीमें नहायें, नहाकर बाल संवारनेमें ही समय बिता दिया। दर्पणमें मुंह देख रहे, खुश हो रहे, इस शरीरकी संभालमें कितने मुग्ध हो रहे हैं ये प्राणी? यदि यह शरीर स्वयं अच्छा होता तो इसे संभालनेकी क्या आवश्यकता थी? यह शरीर खुद गंदा है, बदबू निकलती है। और आकार-प्रकार भी इसका भयानक बन जाता है तो इसे तेल लगाकर संवारते रहते हैं, अच्छे-अच्छे कपड़ोंसे इसे सजाते हैं। ये सब तो बेकार लोगोंके काम हैं। जिन्हें अपने आपके मर्मका पता नहीं है, आत्मकल्याणका जिन्हें परिचय नहीं है वे सब बेकार लोग ही तो हैं। उन बेकार लोगोंको इस शरीरकी सजावटमें रुचि जगती है। हे आत्मन्! इस शरीरके लिये निंघ कर्म मत करो। एक अपने आपके कल्याणमार्गमें लगे।

**अवश्यं यान्ति यास्यन्ति पुत्रस्त्रीधनबान्धवाः।
शरीराणि तदैतेषां कृते किं खिद्यते वृथा ॥६६॥**

आने-जानेकी प्रकृतिवालोंमें व्यर्थका खेद पुत्र, स्त्री, धन, बन्धु, शरीर ये सब अवश्य जाते हैं और जायेंगे; अर्थात् इनका वियोग होता है और वियोग होता रहेगा। फिर इन बाह्य पदार्थोंके लिये वृथा खेद क्यों किया जा रहा है? ये १०-२० वर्ष ही तो अधिक से अधिक संगमें रहेंगे, सदा संगमें न रहेंगे। जो भी समागम मिले हैं ये सब विनष्ट होंगे। इस अनन्तकालके सामने ये १०-२०-५० वर्ष कुछ गिनती भी रखते हैं क्या? १०० वर्ष भी, करोड़ वर्ष भी, सागर भी और उत्सर्पिणी काल और कल्पकाल भी इस अनन्तकालके सामने कुछ गिनती नहीं रखते हैं। स्वयंभूरमण समुद्रमें जितना पानी होगा उसमें एक बूंद पानीका तो कुछ हिसाब लग जायेगा, पर इस अनन्तकालके सामने ये करोड़ वर्ष जल बिन्दु बराबर भी कुछ गिनती नहीं रखते हैं। फिर इन १०-२०-५० वर्षोंकी तो बात ही क्या है? जो लोग इन १०-२०-५० वर्षोंके लिये मौजके साधन, भोगविषयोंके साधन, इन्द्रियसुखके साधन बनाते हैं, श्रम करते हैं वे अनन्त संसारी जीव हैं, व्यामोही प्राणी हैं, मिथ्यादृष्टि जीव हैं। इन नष्ट होने वाले पदार्थोंके लिये व्यर्थ क्यों खेद किया जा रहा है।

मनके वशीकरणका अनुरोध देखो भैया! जैसे कोई उजाड़ करने वाली गाय हो, उसे कितने ही बार खूंटसे बाँध दो, कितने ही उपाय करके बाँधो, पर वह गाय दूसरेके खेत उजाड़ करने पहुँच ही जाती है। ऐसे ही यह प्राणी अपने गुण उपवनका उजाड़ करने वाला है। इसे कितना ही मना करो, कितने ही उपदेशों द्वारा समझावो तिस पर भी यह मन, यह उजड़ गाय, ये इन्द्रियां उसे उजाड़ने के लिये ही उद्यत हो जाती हैं। इस जीवपर विपदा वास्तवमें रागद्वेष मोहभाव है। जिस विपदाके कारण यह अनन्तज्ञान की सामर्थ्य वाला होकर भी आत्मा दबा है, अविकसित है, अपने आपका उत्थान नहीं

कर पाता। कुछ उत्थान कर सको या न कर सको, पर एक बार सत्य तो जान जावो। पदार्थका सत्यस्वरूप जानने पर नियमसे दुःखमें अन्तर हो जायेगा और आनन्दका मार्ग मिल जायेगा।

अज्ञानमें ही विह्वलता—जितनी घबड़ाहट है, भय है, शंका है वह अज्ञान विकारमें हो रहा है। जब यह जीव अजर अमर अछेद्य अभेद्य निज चैतन्यप्रकाशपर नहीं पहुँचता तो इसके सर्वत्र अंधेरा-ही-अंधेरा है, वहाँ फिर कुछ नहीं सोचता। यह मैं आत्मा सबसे न्यारा केवल अपने स्वरूपमात्र हूँ, ऐसी दृष्टि जगे बिना शान्तिका मार्ग तो नहीं मिल सकता। चाहे खूब बढ़िया वैभव मिल गया, स्त्री पुत्र भी अच्छे आज्ञाकारी मिल गए तो उनके सम्बंधमें उनके प्रसंगमें हम अपने उपयोगको बाहर ही बाहर भ्रमावेंगे कुछ अन्तर में शान्ति न पावेंगे। खूब सुहावना सब कुछ मिल जाय जितना तुम अपनी कल्पनामें बात बना सकते हो तो उस ठाठसे कौनसा लाभ उठा लोगे? यह सारी मूर्ख दुनिया जिस ओर दौड़ रही है, चूँकि ये दौड़ रहे हैं तो भली बात होगी, यों ही देखादेखीकी दौड़ लगा देते हैं।

संसारी जीवोंकी प्रकृति—कोई भंगिन मलसे भरा हुआ टोकरा लिये जा रही थी। किसी सज्जन पुरुषने उसे ढांकनेको एक बहुत बढ़िया साफ स्वच्छ रंगीन चमकदार तौलिया दे दिया। तीन पुरुष कुछ देर बादमें उसके पीछे लग गये, सोचा कि इसमें कोई बढ़िया चीज होगी। भंगिनने समझाया अरे क्यों पीछे लग रहे हो, इसमें विष्ठा भरा है। इतनी बात सुनकर उनमेंसे एक लौट गया। अभी दो उसके पीछे लगे रहे। भंगिन बोली भाई पीछे क्यों लग रहे हो? इसमें तो मल है। नहीं-नहीं, इसमें तो कोई अच्छी चीज होगी, सुन्दर तौलियेसे ढकी है। अरे नहीं इसमें मल है। हम नहीं मानते। अच्छा तो हमें खोलकर दिखा दो। भंगिनने खोलकर दिखाया तो देखकर उनमेंसे एक लौट गया। एक अभी भी पीछे लगा रहा। भंगिनने बहुत कहा कि लौट जावो, पर उसने कहा कि हम तो जब अच्छी तरहसे सूँघ-साँघ कर देख लेंगे, विश्वास हो जायेगा तब लौटेंगे। भंगिनने तौलिया उघाड़ा, उस पुरुषने उसे सूँघा। जब सूँघसाँघ कर सही विश्वास हो गया तब वह लौटा। यही हालत इन संसारी प्राणियोंकी है। कोई तो भोगोंको असार समझकर उनमें पड़ते ही नहीं हैं, कोई कुछ भोगोंको भोगकर उनसे पृथक् हो जाते हैं और कोई उन भोगोंमें ही जीवन भर लिप्त रहते हैं।

विवेक—भैया! यहाँ किनमें अपना यश चाहते हो, सब असार हैं, सब इन्द्रजालवत् हैं। क्यों यहाँके रागी द्वेषी मोही प्राणियोंके लिये वृथा खेद कर रहे हो? अहो! यहाँ लोग अपने यशके पीछे हजारों लोगोंको भी मरवा डालते हैं। युद्धमें मूल बात कितनी है? एक निजका प्रभाव बढ़ जाय, यश बढ़ जाय इसके लिये इतना विकट पाप। ओह! कितना महान् अज्ञान छया है। संसारमें अंधेर नहीं है। जो अज्ञानी है वह अज्ञानका फल भोगेगा, जो विवेकशील है वह विवेकका फल भोगेगा। अपने लिये यह समझो कि गृहस्थी है, धन, जन, परिजन इन सबकी रक्षा भी करनी होती है, फिर भी बात सच जाननेसे क्यों मुकरते हो? सत्य बात समझलो तो इससे अनाकुलता हो जाती है। सम्यग्ज्ञानके होने पर अन्तरङ्गमें निराकुलता प्रकट हो जाती है। पुत्र स्त्री बान्धव शरीर ये सब नष्ट हो जाते हैं,

वियुक्त हो जाते हैं और वियुक्त होंगे। इनके लिये वृथा क्यों खेद किया जा रहा है?

अनित्यके प्रेमसे हानि—यह अनित्य भावनाका प्रकरण चल रहा है। यहाँके सभी ठाठ विनाशीक हैं, सभी अनित्य हैं। उन अनित्य चीजोंके प्रति क्यों इतना व्यामोह किया जा रहा है? कोई पुरुष २०) का खोमचा रखकर रोज अपने परिवारका पालन-पोषण करता है। उससे कोई कहे कि देखो हम कल भरकेलिए तुम्हें लखपति बनायेंगे और बादमें जो कुछ तुम्हारे पास है वह भी छीन लेंगे, तो क्या वह लखपति बनना स्वीकार करेगा? अरे वह तो कहेगा कि मुझे तो वह २०) का सट्टपट्ट ही भला है जो जिन्दगीमें साथ देगा। मुझे वह लाखोंका वैभव न चाहिये जो मेरा भी सब छुड़ा देगा। ये मोही प्राणी अनित्यको नित्य मान रहे हैं। यही अज्ञान है।

अनित्यमें अनित्यताके निर्णयमें शान्तिपथका दर्शन—सभी जीव सुख चाहते हैं, आनन्द चाहते हैं, यह बात तो भली है और इनकी प्रकृतिके अनुरूप है। जीवको ऐसा चाहिये भी, लेकिन जो सुख नहीं है, दुःखरूप है उसको ही आनन्द मानकर यह जीव भोगता है, यह तो उसकी नादानी है ना? तो अनित्यको अनित्य समझलो। मिट गया तो क्या हुआ, मिटना ही था। कब तक कहाँ तक कौन साथ रहता है? लोग जानते हैं कि मेरी मां गुजर गई, अनहोनी हुई, पिता गुजर गया तो यह अनहोनी हुई। अरे वह कुछ अनहोनी नहीं हुई। तुम अपनी कल्पनामें अनहोनी समझ रहे हो तो अनहोनी हुई। दूसरेके यहाँ कोई गुजर जाय उसे तो अनहोनीकी दृष्टिसे नहीं देखते। संसारमें होता ही है ऐसा, ऐसी समझ बन जाती है। अरे खुदके सम्बन्धमें सही निर्णय करनेसे ही सम्यग्ज्ञान माना जायेगा। इन विनश्वर पदार्थोंमें प्रीति मत करो और इनके वियोगमें खेद मत करो।

नायाता नैव यास्यन्ति केनापि सह योषितः।

तथाप्यज्ञाः कृते तासां प्रविशन्ति रसातलम् ॥६७॥

स्त्रीरतिका अनौचित्य—इस संसारमें स्त्री न किसीके साथ आयी है और न किसीके साथ जायेगी। अनित्यभावनामें समग्र वस्तुओंकी अनित्यता बताकर इस श्लोकमें केवल स्त्रीकी अनित्यताका कथन किया है। इसका कारण यह है कि मनुष्योंकी सर्वाधिक रति स्त्रीमें होती है। किसीकी स्त्री न रहे और धन वैभव माल बहुत कुछ हो तो वह अपने को ऐसा महसूस करने लगता है कि मैं कहाँ हूँ आदमी, कहाँ हूँ गृहस्थ? मेरा तो कुछ भी नहीं है। क्या है? मोहीजनोंका स्त्रीके प्रति अधिक आकर्षण है। तो तत्सम्बन्धी मोह दूर करनेके लिये स्त्रीकी अनित्यता बताई गई है, कि ये स्त्रीजन न साथ आई हैं, न जायेंगी और साथ-साथ रहेंगी, यह तो प्रकट दीखता है। २०-२५ वर्षकी उमरके बाद ही तो स्त्री मिली। बचपनमें तो स्त्री संगमें थी ही नहीं और न स्त्री साथ जायेगी यह भी दिखता है, फिर उनके लिये ये अज्ञानी प्राणी क्यों रसातलमें प्रवेश कर रहे हैं?

अशुचि देहके रागमें दुर्गति—अहो, इस अशुचि शरीरको सारभूत समझ कर इसमें रमा जा रहा हो तो इसका फल क्या होगा? जो अधिकसे अधिक दुर्गति होगी वह फल है। एक कविने लिखा

है कि जैसे सूकर मलघरमें घुसकर मलको खाकर अपनेको सुखी मानता है ऐसे ही यह मोही जीव मलमूत्र चर्ममय इस शरीरमें आसक्त होकर इस शरीर में अनुराग करके, अपनेको उपभोक्ता मानकर व्यर्थ ही सुखी होनेकी कल्पना करता है। मिला क्या? कुछ नहीं। किया क्या? केवल अपनेमें कल्पनाएँ, फिर रहा क्या? कुछ नहीं। सूनाका सूना, केवल एक वहीका वही और यह सब हो गया व्यर्थ। यही है दुर्गतिका प्रवेश। परभवमें तो दुर्गति है ही, उसकी तो इसही भवमें दुर्गति हो जाती है।

सत्य सम्पदा—सम्पदा है बुद्धिका स्वच्छ बना रहना। इससे बढ़कर कोई विभूति नहीं है, कोई धन नहीं है, कोई अकल नहीं है। कहीं-कहीं देखा होगा लाखोंका धन है और कपड़े भी पहिननेका सहूर नहीं है। लार भी टपकती है, अक्ल भी नहीं है, पागल से बने हैं। जिनको बुद्धि स्वच्छ न होनेसे कोई सुख नहीं है उन्हें तो दुःखी ही माना जायेगा। जिसकी बुद्धि स्वच्छ है, परके रागमें बड़े नहीं, किसीसे द्वेष करे नहीं, सर्वजीवोंके हितकी कामना करे ऐसा पुरुष ही वास्तवमें प्रसन्न है, आनन्दित है। जाना किसीके साथ कुछ नहीं है, लेकिन जिसने यहाँ गड़बड़ मचा दी है वह यहाँ भी कुफल भोगता है और परभवमें भी कुफल भोगता है। किसी भी अनित्य समागममें मोह करना इस जीवको शान्तिके उपयोगकी बात नहीं है।

शान्तिका आधार आशयकी स्वच्छता—शान्तिके उपायमें सर्वप्रथम सम्यवत्वको उपाय कहा है। जब तक आशय विशुद्ध न बने तब तक इसमें शान्तिकी कला चमक ही नहीं सकती है; जैसे गंदी और अटपटी फोकसी भीतपर चित्रकी कला नहीं बनायी जा सकती है। साफ पुष्ट स्वच्छ भीत पर ही चित्रकी कला शोभ देगी, ऐसे ही गन्दे मलिन विषयवासनासे वासित हृदयमें शान्तिकी कला कहाँसे आयेगी? शान्ति तो स्वच्छ आशयके होने पर ही बनती है। इस स्वच्छताके लिये यही तो आवश्यक है कि निजको निज परको पर जानो। अपने आपके स्वरूपका परिचय पाये बिना शान्ति कहाँसे मिलेगी; समस्त परसे निराले केवल ज्ञानमात्र अपनेको देखो। दिन रात भी संकट आता हो और उसमें किसी भी क्षण इस सहजस्वरूपका स्पर्श हो जाये तो भी यह इस कल्याणसंसारमें जीवित रहता हुआ समझिये। सर्वसमागम पर हैं, विनाशीक हैं। इनसे न्यारे अविनाशी ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वको निरखो, उसकी ही दृढ़ प्रतीति बनावो तो इससे शान्ति अवश्य प्राप्त होगी।

ये जाता रिपवः पूर्वं जन्मन्यस्मिन् विधेर्वशात्।

त एव ते वर्तन्ते बान्धवा बद्धसौहृदः ॥६८॥

शत्रुताकी व्यर्थ कल्पना—हे आत्मन्! पूर्वजन्ममें जो तेरा शत्रु था वह ही इस भवमें तेरा अत्यन्त स्नेही बनकर बन्धु हो गया है; अर्थात् तो इसको हितू और मित्र समझता है, किन्तु पूर्वजन्मकी दृष्टिसे देखो तो वह तेरा शत्रु है। इसी तरह जिन्हें आज तुम शत्रु समझते हो वे पूर्वजन्मके कहे बन्धुजन हों, मित्रजन हों। अनित्य भावनाके इस प्रकरणमें जहाँ इस पद्धतिकी अनित्यता दिखाई जा

रही है कि देख जिन्हें तू आज अपना इष्ट समझता है कहो यह भी सम्भव है कि वे पूर्वजन्मके तेरे शत्रु हों, वहाँ यह भी फलित अर्थ निकला कि जिन्हें तू शत्रु समझता है यह सम्भव है कि पूर्वजन्मके वे तेरे मित्र हों और कुछ भी हों, जो आज बंधुजन हैं, इष्ट मित्रजन हैं उनसे राग बढ़ा तो मरे, द्वेष बढ़ा तो मरे, तब शत्रुताका ही तो काम बना।

प्राप्त समागममें ज्ञानियोंका विवेक—सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष ही ऐसे विवेकी होते हैं जो प्राप्तसमागममें अन्तरङ्गसे न राग करते हैं, न विरोध करते हैं। सुकौशल स्वामीपर सिंहनीने आक्रमण किया। लो सिंहनीके भवसे तो बैर हुआ और इससे पहिले वह सुकौशलकी माता ही थी। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो पूर्वजन्ममें भी इष्ट मित्रजन थे और इस भवमें भी इष्ट मित्रजन हैं और कहो कई भावोंसे बंधु बने चले आये हों। लेकिन नफा क्या मिला उनके सम्बंधसे? नेमिनाथ स्वामी और राजुलके जीव ६ भवोंसे वे परस्पर बंधु रहे, पारिवारिक सम्बंध रहा, लेकिन अन्तमें नेमिनाथ स्वामीका गुजारा तभी बना जब त्याग दिया, विरक्त बने, केवल अपने स्वरूपको संभाला। बात यही सत्य है। किसीके साथ कब तक भी रहा आये पर पूरा तभी पड़ेगा जब त्याग होगा, मोह छूटेगा, जब केवल अपने स्वरूपकी संभाल होगी।

समागममें हर्ष माननेकी मूढ़ता—हे आत्मन! तू आज प्राप्त हुए बन्धुजनोंके समागममें हर्ष मत मान, अपनी सुध-बुध मत खो दे। यह तो संसारका नाटक है। शत्रु मिल ही गए, मित्र शत्रु हो गए। यह तो पूर्वजन्मकी बात कही। यह तो एक जन्मकी बात हुई। दो वर्ष पहिले जिससे अधिक विरोध था, कोई कारण ऐसा बना, प्रसंग ऐसा हुआ कि आज उनसे अत्यन्त घनिष्ट सम्बंध है और दो वर्ष पूर्व जिससे अति घनिष्ट सम्बंध था, प्रसंग ऐसा हुआ कि आज वे एक-दूसरेको देखना भी नहीं पसन्द करते। इस ही भवमें सब देख लो। जिन घरोंमें भाई-भाईमें विरोध हो जाए तो वे भाई-भाई बचपनमें कैसे मित्र थे? किसीको कोई पीट दे तो कितना पक्ष लिया जाता था। आज क्या स्थिति है? जिस घरमें पुरुष और स्त्रीमें अनबन रहती हो, एक दूसरेको देखना नहीं चाहते, एक-दूसरेसे बोलना नहीं चाहते, अथवा जरा-जरासी बात पर विवाद कलह हो जाए। उस घरकी पहिली बात देखो जब प्रथम मिलन हुआ, विवाह हुआ, दो एक वर्ष कितनी घनिष्टता रक्खी गई थी?

मोहमें दौड़—लोग यों कहते हैं कि एक शिष्य गुरुके पास एक दिन न आया, अनुपस्थित रहा, तब दूसरे दिन गुरुने शिष्यसे पूछा तुम कल अनुपस्थित क्यों रहे? तो शिष्य बोला महाराज! कल हमारी सगाई हो रही थी। तो गुरु बोला कि तुम अब अपने गांवसे गये। सगाई होनेके बाद उस पुरुषको अपना गांव नहीं सुहाता। उसके लिये स्वसुराल ही सब कुछ हो जाती है। देखा भी न हो कभी स्वसुरालका घर तो भी कल्पनामें चित्र सारा बन जाता है। ऐसा है वह घर। फिर कुछ माह बाद वह शिष्य तीन-चार दिन अनुपस्थित रहा। बादमें जब गुरुके पास आया तो गुरुने पूछा कि तुम तीन-चार

दिन अनुपस्थित क्यों रहे? तो शिष्यने बताया महाराज! हमारी शादी हो रही थी। तो गुरु बोला अरे अब तुम घरसे भी गये। शादी होनेके बाद घरके आदमी हितू नहीं मन में जंचते। जो कुछ हितू है सो वह नई बहू है, उसके बाप भाई हैं।

लोकमें इष्ट-अनिष्टकी व्यर्थ कल्पना जिसके साथ कुछ ही वर्ष पहिले बड़ी मित्रता थी वे ही आज परस्परमें बड़े विरोधी नजर आते हैं और जिनका कुछ ही वर्ष पहिले कट्टर विरोध था पर प्रसंग ऐसा हुआ कि वे बड़े सुहृदय बन जाते हैं। तब फिर किसे इष्ट मानना और किसे अनिष्ट मानना? कुछ निर्णय तो बतावो। अंधाधुन्धा ही अज्ञान की प्रेरणासे जिस किसीको इष्ट मान लिया, जिस किसीको अनिष्ट मान लिया, इससे तो आत्माका पूरा न पड़ेगा।

रिपुत्वेन समापन्नाः प्राक्तनास्तेऽत्र जन्मनि।

बान्धवाः क्रोधरुद्धाक्षा दृश्यन्ते हन्तुमुद्यताः ॥६९॥

बन्धुताकी व्यर्थकल्पना पूर्व श्लोकमें जो बात कही गई है उस ही के प्रतिपक्ष रूप बात इसमें कह रहे हैं। हे आत्मन्! जो तेरे पूर्वजन्ममें बड़े बान्धव थे वे ही इस जन्ममें शत्रुताको प्राप्त हो गये। क्रोधसे जिनके लालनेत्र हो गये अथवा क्रोधसे जिनकी आंखें रुद्ध हो गईं, इस तरह होते हुए तुझे मारनेके लिये ये उद्यत हुए हैं जो हो रहा है, ठीक है, जिसमें जैसी योग्यता है वह वैसा परिणामन कर रहा है, पर कोई भी जीव परमार्थतः न तेरा इष्ट है, न बन्धु है और न कोई तेरा द्वेषी है। सब जीव अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार, वासनाके अनुसार परिणामन किया करते हैं। तुझे किसी विषयमें राग है और उस विषयकी पूर्ति न हो सके, जिस किसी पुरुषके कर्तव्यसे तुझे अपने विषयोंमें बाधा जंचे उसे तू विरोधी मान लेता है। वस्तुतः कोई विरोधी नहीं है, न कोई बन्धु है।

इष्ट-अनिष्ट बुद्धिके नाशकेलिये किसी दार्शनिककी कल्पना जो लोग एक ही आत्माकी सत्ता मानते हैं उनका यह कहना है कि तुम्हारा कौनसा द्वेषी है? जो तू है सो ये सब हैं। जब एक ही आत्मा है तो यह भी मैं, यह भी मैं, जितने जीव हैं वे सब मैं हूँ। तो ऐसा मान कर उनको यह प्रयत्न करना चाहिये कि मेरा किसी भी परजीव पर क्रोध भाव न जगें। अरे तुम किसपर क्रोध करते हो? वह भी तो मैं ही हूँ। विरोधभाव उत्पन्न न हो इसके लिये यह माननेका उन्होंने यत्न किया है। साधारणतया समझमें यह बात बड़ी अच्छी लग रही है कि क्रोध न आये, विरोधभाव न जगे, इसके लिये यह भावना ठीक है। किसपर क्रोध करते हो? वह भी तो मैं ही हूँ, लेकिन वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है। इस कल्पनामें क्षणिक कुछ सन्तोष कर लोगे, मगर सदाके लिये कोई शान्तिका मार्ग नहीं मिल पाता।

जीव और आत्माकी मान्यताका आधार अब इस ही तत्त्वको वस्तुस्वरूपकी दृष्टि से अब देखो तो यों मानना होगा कि जगत्में जितने भी जीव हैं वे सब स्वतः ऐसे ही हैं जैसा कि मैं हूँ और इस पूर्ण सदृश्यताके कारण किसी भी प्राणीके प्रति यह गुंजाइश नहीं निकाली जा सकती कि यह जीव मेरा बन्धु है या यह जीव मेरा शत्रु है। फिर व्यावहारिक क्रियावोंमें यह देखा जाता है कि कोई पुरुष

एकदम लाल आंखें करके मेरेको गाली देता हुआ मेरेसे सीधा मुकाबला कर रहा है, ऐसी स्थितिमें तो वह विरोधी समझा जायेगा ना? तो यह सिद्धान्त यह समाधान देता है कि वह कैसे ही लाल आंखें करके आये और कितना ही गाली देता हो, कितना ही मुकाबला करे, इतने पर भी उस जीवने अपने आप की योग्यताके अनुसार अपने आपमें परिणमन किया है। यों ही कोई किसीका बैरी नहीं है।

मोक्षपथमें अनित्य भावनाका स्थान—यहाँ बात चल रही है मोक्षमार्गके प्रसंगकी। कैसे इस आत्माको देहसे, कर्मसे, विभावोंसे मुक्ति प्राप्त हो उसकी यह बात चल रही है। हे आत्मन्! पूर्वजन्ममें जो तेरे बन्धुरूपसे थे वे ही आज क्रोधके वशीभूत होकर बैरी बनकर तेरे प्राण हरनेके लिये भी उद्यमी हुए हैं। इससे तू जगत्की अनित्यता जान। यहाँ कुछ भी पदार्थ एक बातपर कायम नहीं है। कोई भी विकृत पदार्थ किसी एक निर्णयपर नहीं है। क्षण-क्षणमें अपना रूप, आकार परिणति बदलते रहते हैं। तू इन समागमोंमें न तो प्रीति कर और न विरोध कर। ये तो सब मायाजालरूप हैं।

अङ्गनादिमहापाशौरतिगाढं नियन्त्रिताः ।

पनत्यन्धमहाकूपे भवाख्ये भविनोऽध्वगाः ॥७०॥

अज्ञानान्धोंकी वृत्ति—इस संसारमें निरन्तर परिभ्रमण करने वाले ये प्राणी स्त्री आदिकके महान् पापोंसे अर्थात् बड़े-बड़े रस्सोंसे बड़े दृढ़ बंधे हुए होकर नियन्त्रित होकर अंधमहाकूपमें गिरते हैं; जैसे अंधे पुरुष मार्गमें चलते-चलते कूपमें गिर पड़ते हैं इसी प्रकार ये आंखों वाले प्राणी भीतरसे ज्ञाननेत्रके बुझनेसे अंधे हुए प्राणियोंके समान इस संसाररूपी कुएंमें गिरते हैं। क्या ढंग हो रहा है? मनमाने विचार बनाये, वैभवका संचय किया, विषयोंकी प्रीति हुई, अपने स्वरूपकी सुध खोई और इस संसारमें जन्म-मरणके चक्र लगाते रहे, यही है इनकी चर्या।

मोहियोंकी चर्या—कोई पूछे कि आजकल तुम किस चर्यासे चल रहे हो? क्या प्रोग्राम है क्या आपका कार्यक्रम है? तो जिस प्रोग्रामसे आप चल रहे हो उसे बता दोगे। जिस किसी भी पदार्थको अपना इष्ट अथवा अनिष्ट मानकर रागमें हम अंधे बनते हैं और द्वेषमें हम जले जाते हैं। सुनो भाई यह अपना प्रोग्राम बतला रहे हैं, हम किस प्रोग्रामसे चलते हैं यह प्रोग्राम कहा जा रहा है और अपने इस कुटुम्बके प्रोग्राममें चलकर कर्मबन्ध करते हैं और उसके उदयकालमें फिर कष्ट बढ़ाते हैं, और ऐसा करते हुये हम क्या कर रहे हैं, इसका कुछ पता भी है आप लोगोंको। होना तो चाहिये पता; क्योंकि हम आप सबका एक प्रोग्राम है। इस मामलेमें हम आप सब एक संगठन बनाये हुये हैं, क्या करते हैं? जन्मते मरते हैं, रागद्वेष करते हैं, विषय उपभोग करते हैं, बहुत बड़ा प्रोग्राम है यह बात चल रही है संसारी जीवोंकी। ये संसारी प्राणी अन्य प्राणियोंकी तरह ज्ञानके अंधे बन-बनकर संसाररूपी कुवेमें पतन किया करते हैं। अंध चलेगा, उसे क्या पता कि आगे क्या है? कुवा मिला, उस ही में गिर पड़ा। इसी तरह अज्ञानके अंधे पुरुष, इन्हें क्या पता कि आगे क्या होगा, भविष्यमें क्या होगा? बस आगे जन्म-मरणकी वेदनाके कुएंमें गिर जाते हैं।

पातयन्ति भवावर्ते ये त्वा ते नैव बान्धवाः।

बन्धुतां ते करिष्यन्ति हितमुद्दिश्य योगिनः ॥७१॥

बन्धुता कैसी हे आत्मन्! जो कोई तुझे संसारके चक्रमें डालते हैं उन्हें तुम अपना हितैषी कह सकोगे क्या? और सीधी भाषामें सुन लो। तुम्हें कोई किसी चक्करमें डाल दे, विपदामें गिरा दे, धोखा देकर परेशानीमें डालकर खुद अलग हो जाये, उसको आप हितैषी कहोगे क्या? नहीं कहोगे। तो ऐसे बतलावो कौन-कौन हैं जो तुझे रागकी बात बोल-बोलकर, तेरा दिल हर-हरकर उन्मत्त बना दें, परोपयोगी बना दें और खुद अलग का अलग हैं ही। अलग रहना तो वस्तुका स्वरूप है ही। ऐसी बात कहाँ-कहाँ बीत रही है? जिन-जिनके प्रति यह बात बीत रही हो उनको क्या आप हितैषी कहोगे? अब भी आप जवाब दे देंगे कि नहीं कहेंगे, लेकिन जब नाम लेकर बोल दें लो ऐसे तो हैं ये पुत्र, स्त्री, बन्धु परिवार, मित्र तो अब दिल ठिठकने लगेगा। मैं उन्हें अहितैषी कह दूँ क्या? जो कोई तुझे संसारके चक्रमें डालता है वह तेरा हितैषी नहीं है।

वास्तविक बन्धु जो लोग तेरे हितकी वाञ्छा करके तेरे साथ बन्धुताका बर्ताव करें, तुझे विपदासे बचायें, संतोषके भावमें ले जायें वे ही वास्तवमें तेरे सच्च परममित्र हैं। बात सुननेमें अच्छी लग रही होगी। क्या कहा? जो तुझे विपदासे बचाकर यथार्थ संतोषके भावोंमें ले जाये, तुझे निराकुल बनानेका यत्न करे वह पुरुष तेरा हितैषी है, लेकिन वह है कौन? उसका यदि नाम बता दें, उसका व्यपदेश कर दें तो अब रूखापन आ जायेगा। कौन है ऐसा? उपदेष्टा गुरु महाराज ये तेरे हितकी वाञ्छा करते हैं हित का उपदेश करते हैं, शुभ और शुद्ध मार्ग बतलाते हैं, ठीक है। वे ही हितैषी हैं, लेकिन देखनेमें सामने यों नजर आता है कि कहाँ हितैषी है? वे तो ये ये लोग हैं, जो गुरु, गुरु कहे जाते हैं। वे खुद बेठिकानेमें हैं।

वास्तविक हितैषी जिनको अपने आपकी सुध हुई है, अन्तरङ्गसे हितकी भावना जगी है उनका निर्णय ठीक यही होता है, जो तुझे संसारके चक्रमें डाल दें, वे बान्धव नहीं हैं, वे भाई बन्धु नहीं हैं, हितैषी नहीं हैं; किन्तु जो पुरुष, जो ज्ञानी विरक्त संत निर्मोह है जिन्हें स्वार्थका लगाव नहीं, जो किसी भी प्रकारसे अपने इन्द्रिय और मनके विषयकों भोगना नहीं चाहते हैं ऐसे महापुरुष जो निरारम्भ और निष्परिग्रह होकर हित का उपदेश करते हैं वे गुरु महाराज ही वास्तविक हितैषी हैं। इस जीवके महान् मोहरूपी रागसे पीड़ित पुरुषोंके लिये ये संतजन आकस्मिक वैद्य हैं, अचानक निरपेक्ष वैद्य हैं। ये उपदेष्टा गुरुजन तेरे निरपेक्ष बन्धु हैं, तेरे मंगलको करने वाले हैं, कल्याणके सुखके साधक हैं। ये ही शरण हैं। ऐसे गुरुजनोंके प्रति, संतजनोंके प्रति तो यह श्रद्धा बने कि मेरा वास्तविक हितैषी यह है और जिसमें बसकर रात-दिन राग और द्वेषके परिणाम ही किए जाते हैं, मेरा तेरा, मैं मैं तू तू की वासना जिनके बीच रहकर दृढ़ बनती है वे बन्धुजन तेरे हितैषी नहीं हैं ऐसा निर्णय कर।

अनित्यका व्यर्थ मोह इस अनित्य भावनाके प्रसंगमें इस अनित्यताको इस पद्धतिसे कह रहे

हैं कि तू किनमें भ्रम कर रहा है कि ये मेरे मित्र हैं, जिनको तू जानता है, कल्पनाएँ करता है कि ये मेरे मित्र हैं वे सही मित्र नहीं हैं। तू अनित्यमें अपने हितकी आशा रखता है। इनको छोड़। ये गुरुजन ही तेरे शरण हैं। इन गुरुजनोंमें कोई व्यक्ति नहीं आया जिससे कि मोह बने। वे तो एक सामान्यस्वरूप हैं। देव, शास्त्र, गुरु, वे अपने जातिस्वरूपमें समाये हुए हैं, किन्तु घरमें ऐसा नहीं होता। उनका चेहरा शक्त-सूरत वाणी देखकर व्यक्तिसे मोह होता है। तू अनित्य व्यक्तियोंसे मोह मत कर और अपने शरणभूत संतजनोंके उपदेश पर अपना निर्णय बना। यही तुम्हारे कल्याणका एकमात्र उपाय है।

शरीरं शीर्यते नाशा गलत्यायुर्न पापधीः।

मोहः स्फुरति नात्मार्थः पश्य वृत्तं शरीरिणाम् ॥७२॥

आशाकी अशीर्णता पर खेद—आचार्यदेव आश्चर्यपूर्वक कह रहे हैं कि देखो शरीर तो प्रतिदिन क्षीण होता जाता है परन्तु यह आशा शीर्ण नहीं होती है। शरीर वृद्ध हो गया, रोगसे दब गया, शक्ति नहीं रही उठने बैठने, खड़े होनेकी, मृत्यु निकट है किन्तु आशामें कितना-कितना काल्पनिक वैभव भरा पड़ा हुआ है जिसकी कोई हद नहीं है। वह आयु तो गल जाती है, मगर पाप करनेकी बुद्धि नहीं गलती है। कितनी ही उमर हो गई, वृद्ध हो रहे, आयु गलनेके निकट है लेकिन विषयोंकी आशा और विषयोंकी आशा के ही कारण अन्य जीवोंको धोखा देना अथवा सताने आदिकी बुद्धि यह बराबर चलती रहती है, यह आशा गलती नहीं है।

मोहस्फुरणपर खेद—जीवके मोह तो वृद्धिगत होता है पर आत्मकल्याणका भाव नहीं स्फुरायमान् होता है। अहो! देखिये इन देहधारियोंको समाचार कितना आश्चर्यकारक है। जैसे दिन भरकी धूपसे तपे हुए बगीचेके पौधोंको किसी एक समय और वह भी प्रातःका ठंडके समय अथवा शामके समय उनमें पानी डाल देने पर वे उस गहरी तापसे भी मुरझाते नहीं हैं, ऐसे ही इस गृहस्थावस्थामें नाना उपद्रव नाना परिसह सहे जाते हैं, बड़े-बड़े संताप होते हैं। परिग्रहका सम्बन्ध तो संतापका हेतु है, ऐसे इन गृहस्थीके संतापोंसे तपे हुए इन प्राणियोंको, इन पौधोंको जरूरत है कि किसी क्षण आध मिनट भी ये अपने आत्माके इस अकिञ्चनस्वरूपकी श्रद्धा कर लें, आत्मप्रतीति जलसे अपने मूलका सिञ्चन करके एक क्षण भी अपने आपके अकिञ्चन स्वरूपकी श्रद्धा कर ले तो शेष रात दिनका सारा संताप यह योग्य ढंगसे झेल सकता है अन्यथा तो यह मोही निरन्तर व्याकुल होता हुआ अपने इस जीवनको भी किरकिरा कर देता है। देखिये कितने कठिन उपसर्ग हैं उपद्रव हैं? ये सब उपद्रव भीतर चल रहे हैं। ऐसा कर करके किसीने कुछ लाभ पा लिया हो तो चलो वह भी ठीक है, पर लाभ क्या मिला? जीवनभर आशा की और फिर ज्योंके त्यों रहे। जैसा परिणाम है, कलुषता है, मोह है, रागद्वेष है बस वही पास रह गया और कुछ नहीं है।

पापबुद्धिके न गलने पर खेद—अहो, देखो मोहकी दशा, पापकी बुद्धियां की जा रही हैं।

स्पर्शन इन्द्रिय, रसना इन्द्रिय, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिय इनके वशीभूत होकर यह नाना खोटे परिणाम करता रहता है। यह पापबुद्धि नहीं गलती है और आयु देखो प्रतिक्षण गलती जा रही है। एक जगह लिखा है कि व्रतोंमें दुर्धर व्रत ब्रह्मचर्य व्रत है। इन्द्रियोंमें कठिन इन्द्रिय है रसना, गुप्तियोंमें कठिन गुप्ति है मनोगुप्ति। तो ब्रह्मचर्य का उल्टा है स्पर्शनइन्द्रियका विषय। तो ये दो इन्द्रियां बहुत कठिन इन्द्रियां हैं और इन दोनों इन्द्रियोंको उत्साह देने वाले हैं ये नेत्र। देखनेसे ही आगे बढ़कर नाना व्यञ्जनों के खानेकी सुध होती है और इस नेत्रइन्द्रियसे रूपको देखने पर स्पर्शनइन्द्रियके विषयमें इसकी आसक्ति होती है। तो स्पर्शन इन्द्रियके विषयमें साधक है रसना और चक्षुइन्द्रिय। अब देख लो कितनी सुविधा मिली है कि इस रसना और चक्षु इन कठोर इन्द्रियोंको दबानेके लिये हम आप सबको दो-दो ढक्कन मिले हैं बन्द करलें। आंखोंको दबानेके लिये दो-दो पलक मिले हैं और रसनाको दबानेके लिये दो ओंठ मिले हैं। किस्सा खत्म। पर इनका उपयोग कर सकें, ऐसी बुद्धि भी सही-सलामत रहे तब बात बने।

मोहियोंकी आत्महितकी अनुत्सुकता—यह मोह तो स्फुटायमान् होता है, वृद्धिगत होता है, किन्तु आत्महितकी उत्सुकता भी नहीं होती। मोहसे हटनेका तो कभी मनमें आता ही नहीं चलो शान्त हो, मोह कम करें, विवेक हो, भेदज्ञान हो ऐसी भावना भी बने तो चलो कहलो कि मोहको हटानेकी बात चित्तमें आयी, यह सब अज्ञानका माहात्म्य है। अज्ञान जैसा पाप अन्य क्या होगा? वस्तुस्वरूपका यथार्थ बोध न हो सके, उल्टा उल्टा माने, निजकी सुध न रहे, परको निज माने ऐसा अज्ञानभावका फल कितना खोटा होता है? जैसे केलवज्ञानकी महिमा, बड़प्पन, महत्व बतानेकी सामर्थ्य नहीं है ऐसे ही इस अज्ञानकी महिमा माहात्म्य बतानेकी भी सामर्थ्य नहीं है। अब हे आत्मन्! वस्तुस्वरूपका ज्ञान करके, भेदविज्ञान उत्पन्न करके इस अज्ञानको दूर करो, मोहको क्षीण करनेका उपाय करो, पापबुद्धि और आशाको हटावो। तू स्वयं ही परम आनन्दमय है, अपने स्वरूपका स्पर्श करके आनन्द तो भोग।

यास्यन्ति निर्दया नूनं यद्वत्वा दाहमूर्जितम्।

हृदि पुंसां कथं ते स्युस्तव प्रीत्यै परिग्रहाः ॥७३॥

परिग्रहोंकी चोट—हे आत्मन्! यह परिग्रह पुरुषोंके हृदयमें अत्यन्त संतापदाह उत्पन्न करके चला जाता है। यह परिग्रह तो ठहरता नहीं है और इसका मूलमें जो दस्तूर है कि पुरुषोंके हृदयमें अत्यन्त दाह उत्पन्न करना, सो अपना दस्तूर निभाकर यह परिग्रह बिछुड़ जाया करता है। यह परिग्रह तेरे प्रीति करने योग्य नहीं है। तू व्यर्थ ही परिजन धन वैभव आदिक परिग्रहोंसे पीड़ित होता है, ये किसी भी प्रकार तेरे साथ न रहेंगे। कर लो कितना मोह करते हो, कितने दिन करते हो? कितने तीव्र भावसे करते हो, करलो। ये मोहके दिन तो तुझसे जाने न जायेंगे, कहे न जायेंगे और वे हैं बहुत अल्प दिन। अन्तमें बिछोह होगा, खेद होगा, बड़ा संक्लेश सहेगा। उचित है कि तू अभीसे यथार्थ बोध बना।

मेरा मेरे स्वरूपके सिवाय अन्य सब पदार्थोंका समागम मुझसे भिन्न है, मेरे हितरूप नहीं है। ऐसी शुद्ध दृष्टिके प्रसादसे इस लोकमें भी तू प्रसन्न रहेगा और परलोकमें भी तू प्रसन्न रहेगा।

मोहियोंके ज्ञानवृत्ति पर आश्चर्य—मोहीजन ही ऐसा सोचा करते हैं कि इन त्यागियों को, साधुओंको अथवा इन ज्ञानी गृहस्थोंको जो घरमें रहते हुये भी जलमें भिन्न कमलकी नाई रहते हैं, क्या सुख है, अकेले पड़े हैं, किसीसे मन ही नहीं मिलतो। न जाने किस धुनमें बने रहते हैं, ऐसा मोहीजन सोचते हैं, किन्तु आनन्द तो उस एकत्वके रुचिया ज्ञानी संतोंको ही है। इसे अज्ञानी क्या समझें? जैसे महापुरुषोंकी उदारता देखकर कंजूसोंको आश्चर्य होता है ऐसे ही ज्ञानी संतपुरुषोंकी विरक्तिको निरखकर अज्ञानियोंको आश्चर्य होता है।

दानवृत्तिपर खेद करने वाले कंजूसका दृष्टान्त—एक शहरमें किसी कंजूसने किसी धनिकको धन बांटते देखा। उसी समयसे उसका चित्त अत्यन्त उदास हो गया। ओह! ये कैसा अपना सारा धन लुटाये दे रहे हैं उसका सिरदर्द करने लगा, रोनी-सी शक्ल लेकर वह घर पहुँचा। स्त्री उसे उदास देखकर पूछती है नारी पूछे सूमसे काहे बदन मलीन। क्या तेरो कुछ गिर गयो या काहूको दीन ॥ ऐ पतिदेव! आज आप उदास क्यों हैं? क्या आज आपका कुछ गिर गया है या आपने आज किसीको कुछ दे दिया है? तो सूम कहता है ना मेरा कुछ गिर गयो, ना काहूको दीन। देतन देख्यो औरको तासों बद मलीन ॥ मेरा कुछ गिर नहीं गया और न मैंने किसीको कुछ दे डाला है, किन्तु औरोंको खूब मनमाना धन बांटते हुये देखा तो मेरा दिल हिल गया। ओह! कैसा ये अपना सारा धन लुटाये जा रहे हैं? इसीसे मेरा चित्त आज दुःखी है।

ज्ञानियोंकी उदारतापर मोहियोंको आश्चर्य—अब किन्हीं महापुरुषोंकी कहानीको ये अज्ञानीजन सुनते हैं कि वे इस प्रकारके वैरागी थे, बिना ही विवाह किये निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण करके बड़ी कठिन तपस्या की, ये राजपुत्र इतने सुख साधनोंके बीच रहकर इस प्रकार विरक्त रहे, तो उनके दिलमें एक चोट-सी पहुँचती है और आश्चर्य होता है कि ओह! उनका दिमाग बिगड़ गया था क्या? आत्माकी सुध रखने वाले ज्ञानी सत्पुरुषोंको किस प्रकारका विलक्षण आनन्द जगता है? इसकी पहिचान मोहियोंको कभी नहीं हो सकती।

अरक्ष्योंमें प्रीतिकी व्यर्थता—ये चराचर पदार्थ चेतन, अचेतन परिग्रह, समागम ये तेरे चित्तमें दाह उत्पन्न करके निर्दय होकर चले जायेंगे, अर्थात् तू तो इन पदार्थोंको बड़ा साज शृङ्गार करके रखता है, धन वैभव बढ़ा-बढ़ाकर तू इनका बहुत ढेर संचय बना लेता है, लेकिन ये सबके सब चेतन अथवा अचेतन कोई दया न करेगा। अचेतन तो दया ही क्या करें? जब समय आयेगा, बिगड़ जायेगा। पर चेतन तो दया कर सकता है ना? अरे ये भी दया न करेंगे। मरनेवालेसे घरके बचे हुए लोग बड़ी प्रार्थना करते हैं, भाई मत जावो, और मरनेवाला सुनता नहीं है तो भगवानको पुकारते हैं, हमारा भाई तो सुनता ही नहीं है, वह तो जा ही रहा है, हे भगवन्! वह न जा पाये। सभी लोग बड़े-बड़े प्रयत्न

करते हैं, पर मरने वाला तो निर्दय होकर वियोग ही करता है। यह सब एक अलंकृत भाषामें कहा जा रहा है। तो जिनके प्रसंगमें तूने इतने विकल्प किये, श्रम किया वे सब जब तेरे साथी ही नहीं होते तो इन परिग्रहोंके प्रति तू इतनी अधिक प्रीति क्यों करता है?

संयुक्तोंके वियोगकी अवश्यंभाविता—इन समागमोंको कभी तो बिछुड़ना है। जिन्दगी में भी बिछुड़े तो बिछुड़े, नहीं तो मृत्युके समय तो बिछुड़ेंगे ही, उस समय दुःखी होना पड़ेगा। तो जब सब बिछुड़ना ही है तो अभीसे ट्रेनिंग क्यों न करलो कि ये सब कुछ अवश्य बिछुड़ेंगे। इस जिन्दगीमें परोपकारमें, परसेवामें जिस किसी भी प्रकारसे इन परिग्रहोंके विछोह करनेकी ट्रेनिङ्ग ले लो ताकि उस विछोहमें आकुलता न हो सके, यही तो पुरुषार्थका अभ्यास है। हे आत्मन्! वृथा इन धन धान्यादिक परिग्रहोंमें प्रीति मत करो। अपने आपके आत्माके कल्याणका प्रोग्राम बनावो और उस ही में बढ़ो।

अविद्यारागदुर्वारप्रसरान्धीकृतात्मनाम् ।

श्वभ्रादौ देहिना नूनं सोढव्या सुचिरं व्यथा ॥७४॥

रागान्धीकी व्यथा—मिथ्याज्ञानसे उत्पन्न हुए रागके दुर्निवार प्रसारमें जो जीव अंध हो गये हैं उन जीवोंको अवश्य ही नारकादिक दुर्गतियोंमें बहुत कालपर्यन्त दुःख सहने पड़ते हैं, इनकी क्या तुझे खबर नहीं है? इस संसारमें एक व्यापक दृष्टिसे निरखने वाला पुरुष जानता है कि कभी कहीं अन्याय होता ही नहीं। वह कैसे? जिसने जैसा भाव किया, जिसने जितना पुण्य बाँधा उसके उदयके अनुकूल बीत रही है। उसके ही अनुसार सब फल पा रहे हैं। भले ही कोई अत्याचारी है, लेकिन उस अनाचारके कारण घटकर भी जो पुण्य है उसका फल पा रहा है। अब जो कर रहा है उसका निकट काल में ही फल पा लेगा। एक इस वस्तुपरिणमनकी दृष्टिसे जिस योग्यता वाला पदार्थ है, जिस योग्य निमित्तको पाकर रूप परिणमन कर सकता है उस रूप यह सब विभाव व्यवस्था बन रही है। हाँ हितदृष्टिसे देखो तो खोटी बातका नाम अन्याय है। उसके करनेसे न स्वका हित है और न परका हित है।

स्वपरहित भावना—यहाँ इससे हमें यह शिक्षा लेनी है कि हम जैसा परिणाम करते हैं उसका फल उस रूपसे हमें अवश्य भोगना होगा। अतः हम सबका हित सोचें। शत्रु के प्रति भी यही भावना करें कि हममें सद्बुद्धि जग जाय, यदि ऐसी बात हो गयी तो फिर वह शत्रु न रहेगा, फिर अड़चन क्या रही? सद्बुद्धि वहीं जगती है ऐसी ही कोई बात है। हठ हो तो उस शत्रुके विनाशका हो। एक प्रत्याक्रमणके प्रसंगमें ज्ञानी विरोध भी करता है, फिर भी भीतर छिपी हुई अन्तर्वृत्ति यह ज्ञानीके सदा रहती ही है कि इसके सद्बुद्धि जग जाये तो अच्छा है। इस मुकाबले कि अपेक्षा हम अज्ञान भाव रक्खें, विषयकषायोंके परिणामकी वृत्ति रक्खें तो उसके फलमें नियमसे दुर्गति भोगनी होगी। इस अनित्य भावनाके प्रसंगमें यह बताया जा रहा है कि जिन अनित्य विषयोंके खातिर तू अपने भाव बिगाड़ता है ये भी साथ न रहेंगे और तुझे ये नरकादिक दुर्गतियोंके दुःख भोगनेके कारण बन जायेंगे।

**वह्निं विशति शीतार्थं जीवितार्थं पिवेद्विषम्।
विषयेष्वपि यः सौख्यमन्वेषयति मुग्धधीः ॥७५॥**

विषयोंमें सुखके अन्वेषणकी मुग्धता—जो मूर्ख, जो व्यामोही पुरुष पञ्चेन्द्रियके विषयोंके सेवनमें सुख तलाशते हैं वे ऐसा काम कर रहे हैं जैसे कि कोई अपनेमें ठंड लानेके लिये, शीतलता लानेके लिये आगमें कूद जाये। चाह तो उसकी यह थी कि मेरा संताप बुझे, मुझमें शीतलता आये, लेकिन प्रयत्न किया आगमें कूद जानेका। तो ऐसे पुरुषको आप मूढ़ ही तो कहेंगे, ऐसे ही लोग चाहते तो हैं कि मुझे आनन्द मिले और उस आनन्दकी आशासे पञ्चेन्द्रियके विषयोंकी दाहमें कूद जायें तो फल इसका क्या होता है? संताप। अब भी संताप, आगे भी संताप, जन्म-मरणकी परम्पराकी वृद्धि और जैसे कोई पुरुष बहुत काल जीनेकी इच्छासे विषयको पी ले तो यह उसकी कितनी उल्टी चाल है? ऐसे ही सुख पानेके लिये जो पञ्चेन्द्रियके विषयोंका सेवन करते हैं, विषय विषपान का पान करते हैं तो यह भी उनकी कितनी मूढ़ता है?

त्यागी वृद्धिमें सुखकी संभावना—हे आत्मन्! विपरीत बुद्धि करनेसे सुख न मिलेगा, किन्तु सुखके बजाय दुःख ही मिलेगा। एक आदत ऐसी बनाओ, प्रकृति ऐसी बनाओ कि विरक्तिकी ओर झुकी हुई दृष्टि रहे और परिग्रहोंकी ओरसे ममताका परिणाम न रहे। कुछ अपनी आदत बनाओ इन परिग्रहोंके त्यागकी, और यह आदत रोज-रोज बने। धन, वैभव जोड़ते जायें, जोड़ते जायें और किसी समय २०-२५ हजार दानमें लगा दिया। अरे इसकी अपेक्षा तो रोज-रोज कुछ न कुछ दान करते रहते तो रोजकी उदारताका पुण्य बंध होता और शान्तिकी पात्रता रहती। सबकी प्रकृति होनी चाहिये कुछ त्यागरूप। दीन-दुःखियोंकी सेवामें लगें, विद्यार्थियोंके विद्याध्ययनमें लगें, किसी प्रकारकी धर्म की प्रभावनामें लगें, ऐसी आदत त्यागकी सबमें कुछ न कुछ होनी चाहिये। इस त्यागकी आदतसे इस ममता डाइनकी शिथिलता होनेमें बड़ी सहायता मिलेगी। बजाय विषय विष सेवनके त्यागकी ओर दृष्टि बने तो शान्तिका मार्ग मिल सकता है।

**कृते येषां त्वया कर्म कृतं श्वभ्रादिसाधकम्।
त्वामेव यान्ति ते पापा वञ्चयित्वा यथायथम् ॥७६॥**

पापोंके फलका खुदके ही भोक्तृत्व—हे आत्मन्! जिन प्राणियोंके लिये तू नारकादिक दुःखोंके देनेमें समर्थ पापकर्मोंको करता है सो वे पापी लोग तो जिनके लिये तूने पाप किया वे सब ही धोखा देकर अपनी-अपनी गतिको चले जायेंगे। उनके लिये जो तूने पाप कर्म किया, उसका फल तो केवल तुझे ही अकेला भोगना पड़ेगा। नरकोंमें जो विवेकी नारकी होते हैं, अवधिज्ञान बलसे पूर्वभवकी बातोंको भी जान जाते हैं वहाँ भी इन भावनाओंको भाते हैं बिना क्रम, बिना नामके अपने सच्चे हृदयसे। मैंने जिन कुटुम्बियोंके लिये अनेक पापकार्य किये व कुटुम्बीजन यहाँ एक भी मेरे साथी नहीं हो रहे हैं। उन पापकर्मोंका फल यहाँ मुझे अकेले ही भोगना पड़ रहा है। वस्तु हैं सब एक-दूसरेसे

न्यारी-न्यारी किन्तु अपने स्वरूपसे तन्मय हैं। जो जीव अपने इस यथार्थ स्वरूपकी श्रद्धा नहीं रखते हैं वे बाहरी पदार्थोंकी परिणतियोंमें नाना कल्पनाएँ बनाते और दुःखी होते रहते हैं।

अपनी संभालका अनुरोध—हे आत्मन्! अपने आपको संभाल। कोई खोटा आचरण न बने इसकी सावधानी रख। यही सर्वोत्कृष्ट विभूति है। देखिये यह एक नीति बहुत प्रसिद्ध है कि तेरा धन, वैभव यदि गुम गया, मिट गया तो समझ कि तेरा कुछ नहीं गया। यदि शरीर निर्बल हो गया, अति राज रोगसे ग्रस्त हो गया, एकदम शक्तिहीन हो गया तो समझ कि तेरा कुछ-कुछ गया और यदि तेरा पापोंसे भरा दिल बना तो समझ ले कि सब कुछ चला गया। हे आत्मन्! तू सर्वपरिस्थितियोंमें केवल अकेला ही अपना जिम्मेदार है। ये सब मायामयी रंग हैं जो देखनेमें सुहावने लगते हैं, भीतरमें मोहवश बड़े रमणीक लगते हैं पर हैं सब तुझसे अत्यन्त भिन्न, जितने कि अन्य पदार्थ हैं अत्यन्त भिन्न हैं। कर्तव्य तो अपना परिस्थितिके अनुकूल करें लेकिन इस समझसे कभी बेहोश मत बनें कि मेरा तो केवल मैं ही आत्माराम हूँ। जिस प्रकारकी भावना बनाऊँ, जैसी मैं परिस्थिति बनाऊँ वैसा मैं अपने आपको आनन्द-धाममें अथवा निकृष्ट धाममें ले जा सकता हूँ।

अन्यके द्वारा सहायताकी असंभावना—मेरा सर्वत्र मैं ही हूँ, मेरा भविष्य मेरे पर ही निर्भर है, ऐसा जानकर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी भावनासे अपने आपको पवित्र बनायें, मोक्षमार्गके पथिक बनें। इन मायारूप परिजन इष्ट मित्रादिककेलिए अथवा उनमें अपना मन बहलानेके लिये अथवा उनसे भोग सम्पादनकेलिए तू तृष्णा मत बना, उनकी आशा और उनमें आसक्ति मत कर। जिनकेलिए तू इतने कार्य कर रहा है वे तुझको धोखा देकर अपनी गैल जावेंगे और तुझे उन सब पापकर्मोंका फल अकेले ही भोगना पड़ेगा।

अपने परिणामसे कर्मका संचय और भोक्तृत्व—एक जगह एक सेठने प्रश्न किया था कि हम अन्याय करके असत्य व्यवहार करके, अनेक लोगोंको धोखा देकर इतना द्रव्य कमाते हैं तो उस द्रव्यको जो-जो लोग खाते हैं, जिन-जिनके काम वह धन आता है; अर्थात् परिवारके सभी लोगों को उन सबका पाप बँट जाता होगा ना? इसका उत्तर तो बहुत सीधा है। उत्तर दिया गया कि तुम्हारे अन्यायको, धोखेबाजीको कुटुम्बीजन यदि जानते हों कि यह इस प्रकारकी कमाई है और उसका उपयोग करते हों तो उन्हें पाप लगेगा, मगर वह पाप बढ़कर न लगेगा। तुम्हारा तो तुम पर पूरा ही पाप लगेगा, वे कुटुम्बीजन यदि जानबूझकर उसे भोग रहे हैं, प्रोत्साहन दे रहे हैं तो वे अपना पाप और अलग बाँधेंगे। कदाचित् किसी कुटुम्बीको इस बातका बिल्कुल भी पता न हो कि यह धन धोखा देकर कमाया गया है, अन्याय करके उपार्जित किया गया है और वे उस धनको भोग रहे हों तो उन्हें उसका पाप न लगेगा। खैर, उससे यह शिक्षा लेनी चाहिए कि हम जो कुछ करते हैं उस करनीके जिम्मेदार हम ही हैं ऐसा निर्णय रखते हुए अपना कदम बढ़ायें।

**अनेन नृशरीरेण यल्लोकद्वयशब्दिदम् ।
विवेच्य तदनुष्ठेयं हेयं कर्म ततोऽन्यथा ॥७७॥**

पावन कर्मकी अनुष्ठेयता—इस प्राणीको चाहिए कि इस मनुष्य-देहसे ऐसा काम करे जो इस लोकमें और परलोकमें शुद्धता प्रदान करे और शान्ति प्रदान करे। शुद्ध और शान्त कार्यके अतिरिक्त अन्य कार्य तो हेय हैं। आत्मकल्याणकी बात चित्तमें समाना और आत्मकल्याणके ढंगसे अपने आपको प्रवर्ताना, यह दृष्टि आ जाय तो आत्मकल्याण सुगम है अन्यथा बहुत कठिन बात है। विषयकषायोंके रंगमें चिरकालसे रंगा हुआ पुरुष विषयोंकी ओर ही झुकता है। इसे विषय और कषायोंमें ही सुख प्रतीत होता है।

आहारमें पाशविक वृत्ति—अहो! ऐसे दुर्लभ मानवशरीरको पाकर यह बेचारा कर्मप्रेरित प्राणी क्या करे? इसकी जिन्दगी तो पशुवोंके समान विषयोंमें लगी पगी चली जा रही है और ये मनुष्य पशुवोंसे भी निम्न श्रेणीकी वृत्तिको अपनाए हुए हैं। कोई पशु हिंसा करे अपना पेट भरनेकेलिए तो दो-चार जीवोंको मार लेगा, पर यह नरपशु एक अपनी इज्जत बढ़ानेके लिए दुनियामें मायावीजनोंसे अपनेको एक खासा कहलवानेके लिए मात्र हजारों और लाखों मनुष्योंका विध्वंस करा देता है, यह जिन्दगी पशुवोंसे भी निम्न श्रेणीकी है ना? पशुजन तो पेट भर जाने पर आहार भी नहीं किया करते, कुछ भी संतोषके योग्य उनका उदर भरा हो तो बहुत बढ़िया घास आदिक जो उनका भोजन है सामने भी रखा हो तो उसकी ओर दृष्टि भी नहीं देते हैं, किन्तु इस मनुष्यकी तृष्णा विलक्षण है। भर पेट भोजन किया है फिर भी यदि कोई रसीली चीज, चाट चटपटीकी चीज सामने आ जाय तो कुछ न कुछ खा लेनेकी जगह निकल ही आती है। पशु, पक्षी प्रायः रात्रिको नहीं खाते, कोई बिरला ही अत्यन्त भूखा हो तो वह खा लेता हो तो हमें पता नहीं, पर देखा नहीं गया, किन्तु इस मनुष्यको न रात, न दिन जब चाहें, जैसा चाहे भोजन बना हुआ है उसे खा लेते हैं।

भय व मैथुनमें पाशविक वृत्ति—पशु-पक्षी भय तभी मानते हैं जब उन पर कोई डंडा उठाकर आये, लेकिन यह मनुष्य गद्दा, तक्की पर बैठा है, बड़े शीतल कमरेमें है, कई नौकर हैं, सब कुछ ठाठ हैं लेकिन ऐसी जगह बैठा हुआ भी इतना भयशील है कि उसका चित्त ठिकाने भी नहीं है। क्या-क्या कल्पनाएँ करता है, क्या-क्या शंकाएँ बनाता है? उनको विशेष क्या खोलना, सबको कुछ न कुछ उन कल्पनावोंके बारेमें परिचय है। ये पशु तो किसी नियतकालमें मैथुन वृत्तिमें प्रवृत्त होते हैं किन्तु मनुष्यकेलिए कोई काल नियत है क्या? ऐसी एक बात नहीं, मुकाबला करके देख लो तो यह धर्महीन मनुष्य पशुवोंसे भी अधिक निम्न श्रेणीका पुरुष है।

दुर्लभ नरदेहको व्यर्थ न गँवानेका अनुरोध—ऐसे दुर्लभ मनुष्य शरीरको पाकर हे प्राणी! तूने व्यर्थ खो दिया। कितना अमूल्य हीरा, रत्न पाकर कौवोंको उड़ानेके लिए फैंक देता है, समुद्रमें गिर जाता है, ऐसे ही इस मनुष्य शरीर रत्नको एक रौद्र ध्यानके लिए, एक विषयभक्षणके आनन्दके लिये

तूने यों ही गँवा दिया। अब तू ऐसा ही कार्य कर जो इस लोकमें भी शुद्धि प्रदान करे और परलोकमें भी शुद्ध शान्ति प्रदान करे।

**वर्द्धयन्ति स्वघाताय ते नूनं विषपादपम् ।
नरत्वेपि न कुर्वन्ति ये विवेच्यात्मनो हितम् ॥७८॥**

स्वघातवृत्ति—जो मनुष्य इस नरदेहको पाकर भी भेदविज्ञान नहीं करते, विवेक विचार नहीं बनाते, आत्मका हित नहीं करते वे पुरुष अपने ही घातके लिये विषवृक्षको बढ़ाते हैं। पापकार्य सब विषवृक्षकी तरह हैं। जैसे विषवृक्षका फल प्राणियोंको मारने वाला होता है इसी प्रकार इस पापकार्यका फल जीवका, प्राणियोंका हनन करने वाला होता है। विविध देहोंमें भटका कर संसारके क्लेशोंको देनेका कारण होता है। जब बुरे दिन आते हैं तो अपना ही वैभव अपने घातके लिये हो जाता है। उदय प्रतिकूल हो तो वही वैभव प्राणनाशका कारण बन जाता है। कोई लोग तो डाकुओंके द्वारा सताये जाते हैं और घात किये जाते हैं, कितने ही रागीजन अपनी ही कल्पनाओंसे अपने दिलको कमजोर बनाकर हार्टरोगके रोगी हो जाते हैं और उनका हार्ट फेल हो जाता है, गुजर जाते हैं। जब प्रतिकूल समय होता है तो वह प्राप्त समागम भी इस जीवके घातका कारण बनता है।

पापविरत होनेका शिक्षण—समस्त पापकार्य विषवृक्षके समान हैं, उनके ही फलमें ये अनेक उपद्रव भोगने पड़ते हैं। क्या विश्लेषण किया जाय, पाप किया और उसका फल तुरन्त भोगना पड़ता है। कोई जाने अथवा न जाने, पाप कार्यके समय जो क्षोभ होता है, कायरता जगती है, कल्पनाएँ बढ़ती हैं उन खोटी वृत्तियोंमें तो तुरन्त ही संक्लेश सहना पड़ता है, पापका फल इस जीवको तुरन्त मिल जाता है। फिर जो कर्मबंधा पापका और उसके उदयमें कालान्तरमें फल मिला वह तो उसका एक प्रकारसे वृद्धिरूप समझिये अर्थात् ब्याज समझिये। तुरन्त भी दुःखी हो और भविष्यकालमें भी दुःखी होना पड़ता है। अतएव हे कल्याणके इच्छुक पुरुष! तू अपना घात अपनी प्रवृत्तिसे मत कर। एक शुद्ध निज-स्वरूपकी दृष्टि कर। तेरा मात्र तू ही है, तू अकिञ्चन् है, तेरा स्वरूप प्रभु-स्वरूपकी तरह ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण है। अपने स्वरूपको संभाल इस सावधानीसे सांसारिक कष्टोंके सहनेकी सामर्थ्य प्रकट होगी और उन कष्टोंके समय निज स्वरूपकी दृष्टिसे विचलित न होगा तो मुझे मोक्षमार्ग मिलेगा, अपूर्व आनन्द होगा, निकट कालमें ही समस्त संकटोंसे छुटकारा पा लेगा। तू अपने ही घातके लिये विषवृक्षकी वृद्धि न कर। भेदविज्ञान करके अपने स्वरूपको लक्ष्यमें लेकर अपने हितको किये जा।

**यद्देशान्तरादेत्य वसन्ति विहगा नगे ।
तथा जन्मान्तरान्मूढ प्राणिनः कुलपादपे ॥७९॥**

पक्षियोंकी तरह अत्यल्प काल तक एकत्र निवास—अनित्य भावना के इस प्रकरणमें प्राप्त समागमोंकी अनित्यता बतायी जा रही है; जैसे अन्य देशोंसे आकर पक्षीजन एक पेड़ पर बस जाते

हैं इसही प्रकार जन्म-जन्मान्तरोंसे आ आकर ये प्राणी एक इस वंशवृक्षमें इकट्ठे हो जाते हैं। हे मूढ़! थोड़ी देरके लिये एक जगह इकट्ठे हुये इन परजीवोंमें तू आसक्ति करता है और इन्हें मान लेता है कि ये सब मेरे हैं, इस मोह बृद्धिसे तू अब उनके वियोगकालमें अत्यन्त दुःखी होता है, कष्ट भोगता है। जैसे वे पक्षी अपने ही आरामके लिए अपने ही आप एक पेड़ पर इकट्ठे हो जाते हैं और जैसे ही सवेरा होता है तो अपने आहारकी खोजके लिए वे उस वृक्षको छोड़कर अपने इष्ट देशोंको चले जाते हैं ऐसे ही ये संसारके प्राणी जैसा जिसने वाञ्छाका निदान बांधा, पुण्य पाप किया उस कर्मके अनुसार आ आकर एक गुल गृहमें इकट्ठा हो जाते हैं और फिर आयुके क्षय होनेपर अपनी-अपनी बांधी हुई आयुके अनुसार उस-उस गतिको चले जाते हैं। इन आने जाने वाले प्राणियोंमें हे प्राणी! तू मोह को प्राप्त मत हो। यथार्थ बातकी समझ रख।

पशु-पक्षियोंमें भी अलभ्य मानवीय मोहवृत्ति पक्षीजन तो फिर भी चुपचाप आते हैं, पेड़पर बैठ जाते हैं। उन्हें किसी पक्षीसे किसी प्राणीसे विशेष राग नहीं है, कभी किसी पक्षीके पास बैठा है तो थोड़ी ही देरमें उड़कर किसी पक्षीके निकट बैठ गया, कभी किसी डालीपर बैठ जाता है तो फिर थोड़ी देर बाद किसी डालीपर बैठ गया। वैर विरोध भी इनके कुछ नहीं है। कभी कोई दूसरा पक्षी उस स्थानपर आये तो थोड़ा विरोधसा जंचता है किन्तु वह तो एक प्राकृतिक ढंग है, लेकिन ये मनुष्य-जन एक जगह होकर इतना उपयोग होता है और इतना तीव्रराग होता है कि वियोगके समय सारे गांवको यह जगा देता है, हल्ला मचा देता है। विरोध भी किन्हीं इष्टजनोंमें। परिजनोंमें, दो भाइयोंमें हो जाय तो इतना कठिन विरोध हो जाता है कि जिसकी वजहसे अपनी सारी सम्पदाका भी विनाश कर देता है। ऐसा यह मानव उन एक जगह बसने वाले पक्षियोंसे भी भयावह स्थितिमें अपने को बनाये रहा करता है।

विनश्वर समागमोंकी प्रीतिपात्रताका अभाव भैया! इन समागमोंमें प्रीति मत कर, ये थोड़ी देरको मिले हैं। जैसे मुसाफिरको सामने से आता हुआ कोई मुसाफिर मिल जाय तो वे रास्तेमें कितनी देर ठहरते हैं? थोड़ी राम-राम हो गयी या अधिक बात हुई तो थोड़ी बीड़ी सुलगा ली, चलते बने; जैसे इन मुसाफिरोंका किसी चौहट्टेपर अथवा रास्ते पर मिलना अति अल्प समयका है, तुरन्त ही बिछुड़ जाते हैं ऐसे ही ये संसारके सब प्राणी एक जगह कभी थोड़ेसे मिल गए तो अल्पकालके ही बाद बिछुड़ जाते हैं। इन समागमोंमें राग मत करो। अपने स्वरूपको संभालो, इससे ही शान्तिका मार्ग मिलेगा।

प्रातस्तरुं परित्यज्य यथैते यान्ति पत्रिणः।

स्वकर्मवशात्: शश्वत्तथैते क्वापि देहिनः ॥८०॥

सत्वर विछोह शामके समय एक वृक्षपर बस जाने वाले पक्षी रात्रिभर उस वृक्ष पर विश्राम करते हैं और प्रातःकाल उस वृक्षको छोड़कर अपने-अपने प्रयोजनसे नाना दिशाओंमें चले जाते हैं इसही प्रकार ये प्राणी अपने-अपने कर्मोंके वश होकर जिस किसी भी गतिमें चले जाते हैं। यहाँ इस जगतको

यों अनित्य बताया जा रहा है कि यहाँके ये पारिवारिक समागम मित्रजनोंका समागम ऐसा अनित्य है जैसे कि रात्रि भर विश्राम करनेके लिये पक्षी एक जगत आते हैं, सवेरा होते ही चले जाते हैं ऐसे ही यहाँ कोई किस गतिसे आया कोई किस गतिसे। सभी समागमसे आये हुए लोग अपनी-अपनी आयुके अनुसार अपने-अपने कर्मोंके अनुसार किसी भी गतिमें चले जाते हैं और भी देखिये अनित्यता की बात।

गीयते यत्र सानन्दं पूर्वाहणे ललितं गृहे।

तस्मिन्नेव हि मध्याह्ने सदुःख मिह रुद्यते ॥८१॥

एक दिनमें एक ही घरमें गान रुदनकी घटना जिस घरमें प्रभातके समय आनन्द और उत्साहके साथ सुन्दर मंगलगीत गाये जा रहे हैं कही मध्याह्नके समयमें ही घरमें दुःखके साथ रोना सुना जाता है ऐसी स्थितियां प्रायः उस समय बहुत घटित होती हैं, जब किसी घरमें कोई बालक पैदा हो तो बालकके उत्पन्न होनेके समय बहुत खतरे रहते हैं। कुछ बिगड़ जाय या कोई रोग हो जाय या किसीके पहिली ही बार बालक पैदा हो तो बड़ा खतरा माना जाता है। बालक तो पैदा हो गया। पड़ोसियोंने, कुटुम्बियोंने, मित्रोंने बड़ी खुशी मनायी प्रातःकाल और कुछ गड़बड़ी होनेसे बच्चा गुजर गया अथवा मां गुजर जाय तो थोड़ी ही देरमें उसीही घरमें रोना ही रोना होने लगता है। ऐसी ही और भी घटनायें सोच लीजिये।

सांसारिक सुखमें मग्नताका अनौचित्य अनित्यताकी बात यहाँ कही जा रही है। यहाँ कौनसे सुखमें मग्न होना? कोई सुख यहाँ सदा रहनेका नहीं है, बल्कि सुखके बाद दुःख ही आता है। ये सांसारिक सुख ऐसे हैं कि सदा न रहेंगे। जब सदा न रहेंगे तो इसका अर्थ यह है कि इन सांसारिक सुखोंके मुकाबलेमें इनके बाद दुःख ही आयेगा और कोई स्थिति नहीं है। ऐसे इस अनित्य संसारमें। हे कल्याणार्थी! किसी भी सुखमें मग्न मत हो। सुख काहेका? शान्ति तो वहाँ होती है जहाँ शान्तस्वरूप सबसे न्यारा केवल ज्ञानमात्र अपने आपका स्वरूप दृष्टिमें होता है। यहाँ स्थिति नहीं है तो बाहरी पदार्थोंका कितना भी समागम हो उन बाहरी पदार्थोंपर दृष्टि देकर यह आत्मा क्षोभ ही पायेगा, शान्ति नहीं पा सकता है। उदार बनो। उदार बननेका अर्थ यह है कि सांसारिक सुखोंमें मग्न मत हो और कोई विपदा आ जाय तो उसमें अपना धैर्य मत खोवो। सुख है तो वह भी औपाधिक भाव है, दुःख है तो वह भी औपाधिकभाव है। तू अपने आपमें अपने आपके सहजस्वरूपकी दृष्टि करके अंतःपरमार्थ स्वाधीन बना रह।

सगसे विषादकी नौबत एक राजाने जंगलमें गर्मीके संतापसे संतप्त किसी साधुको देखा और उस साधुसे कहा तुम्हें हम एक छतरी देंगे बड़ी धूप लग रही होगी। साधु बोला दे देना, मगर नीचेकी गर्मीको क्या करेंगे? महाराज रेशमके जूते बनवा देंगे। बनवा देना, पर खुला बदन रहेगा तो लू का इलाज करोगे? महाराज कपड़े बनवा देंगे। अच्छा बनवा देना, फिर यह तो बतावो कि तिष्ठ-तिष्ठ कौन कहेगा? महाराज विवाह करा देंगे, स्त्री खाना बनायेगी। फिर उसका पालन कैसे होगा? महाराज १०

गांव और लगा देंगे। फिर बच्चे भी तो होंगे उनका पालन कैसे होगा? महाराज ५ गांव और लगा देंगे। फिर उन बच्चोंमें से कोई गुजर जायेगा तो रोवेगा कौन? महाराज और सब कुछ तो हम कर सकते हैं पर यह काम हम नहीं कर सकते। रोना तो उसे ही पड़ेगा जिसके ममता होगी। तो साधु बोला कि हमें ऐसी छतरी न चाहिये जिसके कारण रोने तक की भी नौबत आ जाय।

संसारमें सुखका अभाव—संसारके सभी जीवोंपर ये बातें बीत रही हैं। जिसके भी क्लेश है उसे मोह ममताके कारण क्लेश है। चाहे कोई समाजसे मोह करे, चाहे परिजनोंसे, चाहे धन वैभवसे, चाहे अपने शरीरसे पर क्लेशका कारण मोह है। क्लेश बिना रागके, बिना मोहके हो ही नहीं सकता। शान्ति प्राप्त करनेकेलिए हम आपका कर्तव्य यह है कि अपने भीतर गुप्त ही गुप्त अपने स्वरूपको सर्व परभावोंसे न्यारा निरख निरखकर उस राग मोहकी रस्सीको तोड़ दें, इसके अतिरिक्त अन्य कोई शान्तिका शाश्वत उपाय नहीं मिल सकता। कोई भी मनुष्य चाहे धनी हो, नेता हो, किसीको भी लगातार दो-चार घंटे भी सुखी होते क्या देखा है? कोई सुखकी कल्पनाकी बात आयी तो सुखी हो रहे थे, इतनेमें ही कोई भाव ऐसा बन गया कि दुःखी होने लगा। लगातार कोई भी पुरुष एक घंटा भी सुखी नहीं रह सकता।

संसारका अर्थ सुख-दुःखका चक्र—करणानुयोगमें भी यह बताया है कि निरन्तर साताका उदय किसीके नहीं होता। १३वें गुणस्थानमें वहाँ निरन्तर साताका उदय बताया है, जबकि वहाँ सुख भोगनेका राग ही नहीं रहा। असाता भी सातारूप परिणम कर उदयक्षणमें आता है। सयोग-केवलीकी साता वेदनीयका उदय चलता है। यह सुविधा वहाँ है जहाँ कुछ इच्छा ही नहीं है। इच्छावान् जीवोंके किसीके भी घंटा आधा घंटा भी लगातार सुख नहीं रह सकता। कोई बात तुरन्त ऐसी चित्तमें आयेगी कि कितने ही अंशोंमें वह दुःखरूप भाव बना देगी।

सांसारिक सुखोंकी क्लेशगर्भिता—संसारके सुख-दुःखोंसे व्याप्त हैं। मोटे रूपमें देखो किसीके बच्चेकी शादी होती है तो उस शादीकी खुशी मनाई जा रही है, मगर यह बाप कोई आध घंटा भी अच्छी तरह सुखी रह सकता है क्या? उसे बीच-बीचमें कितने ही दुःख आते हैं? सब रिश्तेदारोंको निमंत्रण भेजें, कोई प्रतिकूल हो तो उसे मनायें, कितनी ही बातोंमें क्रोध आ जाये, कितनी ही बातों में आर्थिक परेशानी हो जाये, और पहिले जैसा जमाना हो तो पंचोंके हाथ जोड़-जोड़कर ही परेशान हो जायें कितने क्लेश भोगने पड़ते हैं और इतना ही नहीं, विवाह हो चुकनेके बाद भी अनेक उलाहने आयेंगे। कहाँ सुख मिला? केवल कल्पनासे सुख माना सो उसके बीच-बीच, कल्पनाओंसे बीच-बीचमें अनेक दुःख भी भोगने पड़ते हैं। ये सांसारिक सुख रमनेके योग्य नहीं हैं। वैभव और परिग्रहके संचय होनेसे कल्पनामें बसाये गए ये सुख भी एक संसारकी पद्धति हैं, व्यर्थकी बात है। संसारमें यदि सुख होता तो तीर्थकर जैसे महापुरुष भी इसे त्यागते क्यों? एक अणु भी यहाँ राग करनेके योग्य कुछ नहीं है।

शरीर की अरम्यता—यह शरीर जिस बन्धनमें पड़ा है, जिसके बिना यहाँ सरता नहीं, खाये बिना काम न चले, इसमें फोड़ा-फुंसी, जुकाम, बुखार कुछ भी हो जाये तो उसकी चिकित्सा किये बिना काम नहीं सरता, ऐसा अतिनिकट सम्बंध वाला यह देह भी रमनेके योग्य नहीं है। इसकी प्रीतिसे इस जीवको अलाभ ही है। हे आत्मन्! सांसारिक सुखोंमें आसक्त मत हो।

यस्य राज्याभिषेकश्रीः प्रत्यषेत्र विलोक्यते।

तस्मिन्नहनि तस्यैव चिताधूमश्च दृश्यते ॥८२॥

एक ही पुरुषका एक ही दिनमें राज्याभिषेक व चिताधूम—प्रभातके समय जिसके राज्याभिषेक देखा जाता है उसी दिन उस राजाकी चिताका धुवां देखनेमें आ जाता है। कितनी ही बरातोंमें तो सुना गया ऐसा कि बारात चल रही है, विवाह हो चुका या होनेको है उसी बीच दूल्हेका किसी कारणसे मरण हो गया, ऐसी बात कई जगह सुनी भी होगी। लो पहिले तो इतनी खुशी थी, बाजे बज रहे, गीत गाये जा रहे, सब खुश हो रहे लेकिन अचानक ही हार्ट फेल हो जाये, पति या पत्नी कोई गुजर जाये तो लो सारा वातावरण दुःखरूपमें परिणत हो जाता है। हम आप आज तक जिन्दा बने हुए हैं, किसीकी ४० वर्षकी उमर है, किसीकी ५० वर्षकी उमर है, क्या हम आपकी यह हालत नहीं हो सकती है कि २० वर्षकी उमरमें गुजर गये होते या उससे भी पहिले गुजर गये होते? गुजर गये होते तो हम आपका यहाँ क्या था? कहाँ पैदा हुये होते, क्या बने होते? अब तक जीवित हैं लेकिन अब तक भी मोह और राग करनेमें कसर नहीं रखते। कुछ तो विवेक करना होगा अन्यथा इस अंधाधुंध दौड़में बहुत विपत्ति सहनी पड़ेगी।

दुर्लभ वर नरदेहके सदुपयोगमें विवेक—यह मनुष्य देह बड़ी दुर्लभतासे मिला है। संसारमें कितनी कुयोनियां हैं, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय आदिक कैसे-कैसे तुच्छ भव हैं, उन भवोंसे निकल-निकलकर और इस आत्माके ज्ञानका आवरण करने वाले कर्मोंसे कुछ छूट-छूटकर आज पंचेन्द्रिय और मनुष्य हैं। पशु-पक्षियोंसे हम आप लोगोंमें कितनी श्रेष्ठता है? जहाँ इतना उत्कृष्ट मन होता है कि श्रुतकेवली इस मनुष्यभवसे ही होते हैं। जितना केवलीका ज्ञान है श्रुतकेवलीका भी उतना ही ज्ञान है। अन्तर यह है कि केवली भगवान् प्रत्यक्ष रूपसे जानते हैं और श्रुतकेवली परोक्षरूपसे जानते हैं। ऐसा महान् मन वाला भव है यह मनुष्यका। मनुष्यभव पाया, उत्तम देश, उत्तम जाति, उत्तम कुल, बुद्धि उत्तम, धर्मश्रवणकी योग्यता, समझनेकी योग्यता इतना सब कुछ दुर्लभ समागम पाकर भी इस यथार्थ धर्मके धारणकी तीव्र उत्सुकता न जगे तो इससे अधिक और खेदकी बात क्या बतायी जा सकती है? सदुपयोग करो, जो दुर्लभ चीज मिली है उसका ऐसा उपयोग करो जिससे उत्कृष्ट मार्ग शान्तिपथ प्राप्त हो जाये।

सुखोंकी क्षोभमयता—भैया! यहाँके सुखोंमें क्या छंटनी करना कि मुझे ऐसा सुख मिले। सभी सुख क्लेशरूप हैं, क्षोभरूप हैं; जैसे सांप का नाम बदल देनेसे कहीं विषमें बदल तो न हो जायेगी।

चाहे सांपनाथ नाम रख लो, चाहे नागनाथ नाम रख लो। नाम तो नागनाथ बड़ा अच्छा है, पर ऐसा बढ़िया नाम रख लेनेसे उसके विषमें अन्तर तो न आ जायेगा। ऐसे ही ये सुख हैं। कल्पनावश इनका कुछ नाम रख लीजिए। धनी होना, वैभवका सुख, स्त्रीका सुख, यशका सुख कुछ भी नाम रख लीजिये, कैसी ही कल्पनाएँ कर लीजिये उससे इस सुखके भोगनेमें जो क्षोभ कारण है, क्षोभ परिणमना है और क्षोभफल है उसमें अन्तर नहीं आ जाता। कैसा ही सुख भोगों उसका पहिले क्षोभ होता है। भोगनेके कालमें क्षोभ होता है, भोग भोगनेके बादमें क्षोभ होता है। इस सुखमें रति करना योग्य नहीं है।

अचानक मरणके निर्णयसे धर्मपालनाका उत्साह—किसीने अपने बारेमें किसी दिन की मृत्युका निर्णय किया है क्या कि अमुक दिन मरेंगे? अरे मृत्यु तो जब भी होगी अचानक होगी, तो उस अचानककी बात कुछ नियत है क्या? अचानक तो अचानक ही कहलाती है। नीतिकार भी कहते हैं कि देखा भाई! यदि तू धनकी कमाई चाहता है तो अपनेको ऐसा सोच कि हम तो अजर अमर हैं, बहुत काल तक जिन्दा रहेंगे और समर्थ रहेंगे। यदि ऐसा सोच बैठा कि हम तो शायद कल सुबह भी न रहें, मृत्यु हो जाय तो धन कैसे कमायेगा? जिसे धन कमाना हो वह अपनेको अमर माने। इसी प्रकार जिसे विद्या सीखनी हो तो वह भी अपनेको चिरंजीव माने। लो अभी कोई गणितका या किसी विषयका हम अभ्यास करनेको कहें और उसी समय ख्याल आ जाये कि हमारी मृत्यु तो घंटा भर बाद भी हो सकती है तो वह इस विद्याको कैसे पढ़ेगा? विद्याका अर्जन करनेके लिये और धनका अर्जन करनेके लिये अपनेको चिरंजीव मानना होगा तब वह यत्न होगा। चाहे कभी गुजर जायें, वह बात अलग है लेकिन धर्मपालन वही पुरुष कर सकेगा जिसके चित्तमें यह समाया हो कि मृत्युने तो मेरा केश ही पकड़ रक्खा है, किसी भी मिनट यह मृत्यु मेरे केशोंको झटक सकती है, अर्थात् मृत्यु हो सकती है, ऐसा जिसका निर्णय हो वह पुरुष धर्मका पालन कर सकता है।

परपदार्थोंकी विनश्वरताके निर्णयसे धर्मकी ओर झुकाव—परकी बात भी ऐसी ही देखिए। ये बाह्य समागम अनित्य हैं, किसी भी क्षण किसी भी ढंगसे विघट सकते हैं, ऐसी श्रद्धा हो परवस्तुओंमें तो वह तो उनसे अपेक्षा करके धर्मपालनमें लग सकता है। अनेक घटनाएँ ऐसी देखी जाती हैं प्रभात समयमें तो खुशी मान रहे हैं और उस ही दिन वही पुरुष थोड़ी देर बाद अत्यन्त दुःखमें ग्रस्त हो जाते हैं, यह संसारकी बहुत बड़ी विचित्रता है।

अत्र जन्मनि निर्वृत्तं यैः शरीरं तवाणुभिः।

प्राक्तनान्यत्र तैरेव खण्डितानि सहस्रशः ॥८३॥

वर्तमान देहाणुवोंकी पूर्वमें असकृद् बाधकता—हे आत्मन्! इस संसारमें इस समय जिन परमाणुवोंसे तेरा यह शरीर बना है उन्हीं परमाणुवोंने इस शरीरसे पहिले पूर्व भवोंमें तेरे हजारों बार शरीरके खण्ड-खण्ड किए हैं। आज इस पाये हुए शरीरमें इतना अनुराग बनाये हैं। जिन शरीर परमाणुवोंसे, स्कंधोंसे तू इतना अनुराग कर रहा है ये स्कंध किसी अन्य जीवके शरीर बन-बनकर तेरा

हजारों बार घात कर चुके हैं अथवा ये ही परमाणु शरीर तेरे ही शरीरके घातक अंग बन-बनकर तेरा हजारों बार घात कर चुके हैं। ये शरीर स्कंध भी, शरीरके अंग भी राग करने योग्य नहीं हैं। यह तो एक शरीरकी बात कही। सभी चीजोंमें यही बात घटा लो।

धन परिजन आदि समागमोंकी बाधकता—जिस धन, वैभवके लिए तू इतना अनुराग बनाये है यह धन, वैभव तेरे घातका अनेक बार कारण बन चुका है। ये परिजन मित्रजन जिनको तू अपना सुखकारी जान कर जिनसे तू प्रेम कर रहा है ये ही जीव अनेक भवोंमें तेरे शरीरके प्राणोंके घातक हुये हैं। कौनसा समाज यहाँ स्नेह किये जानेके योग्य है और यों भी देखिये पुराने परमाणु तो इस शरीरमें से खिर जाते हैं और नये परमाणु वहाँ उस बन्धनमें आ जाते हैं। इस कारण वे ही परमाणु तो शरीरको रचते हैं और वे ही परमाणु इस शरीरको बिगाड़ते हैं। शरीरकी यह दशा है और पुराने भवकी बात देखो, इसी ही भवमें अपने ही शरीरके अंग अपना ही घात करनेके कारण बनते हैं। शरीरका ही तो अंग है। कोई फोड़ा हो जाय, या अन्य कोई कठिन रोग हो जाय तो अपना ही अंग अपने इस आत्माका ही घात कर देनेवाला हो जाता है। तुम किसमें विश्वास करते हो? किसी परवस्तुका कुछ विश्वास भी किया जा सकता है क्या? अरे स्वयं ही स्वयंके विश्वासमें आये तो यह विश्वास हितकर होगा। परपदार्थ चाहे हमें कितना ही अच्छा हो, पर उसका उपयोग होना या उसके प्रतिकूल बनना यह तो हमारे आधीन नहीं है। परममित्रसे भी मित्रका घात हो जाता है जब भाग्य प्रतिकूल होता है। तुम किस परपदार्थका विश्वास करते हो? एक निज सहजस्वरूपके श्रद्धान्में ही स्वहित का विश्वास करें। इस अनित्य समागमोंमें मोह और प्रीति न करें।

शरीरत्वं न ये प्राप्ता आहारत्वं न येऽणवः।

भ्रमतस्ते चिरं भ्रातर्यन्न ते सन्ति तद्गृहे ॥८४॥

शरीराणु व आहाराणुवोंकी उच्छिष्टता—हे भ्रातः! इस संसारमें बहुत कालसे भ्रमण करते आये हुये तेरे साथ शरीररूपसे और आहाररूप से अनन्त अणु प्राप्त होते आये हैं। सत्य समझ कि संसारमें ऐसा कोई परमाणु नहीं बचा जो तेरे शरीररूप न हुआ हो और तेरे आहारमें न आया हो; अर्थात् इस जीव ने अनन्त परिवर्तन किये हैं। अनादि कालसे यह जीव शरीरोंको धारण करता हुआ चला आया है। तब संसारमें जितने परमाणु हैं, स्कंध हैं, ग्रहण योग्य हैं, उन सबको यह जीव अनन्त बार शरीररूपसे परिणमा चुका और आहार करके ग्रहण कर चुका है।

पुद्गलोंकी अनित्यता व उच्छिष्टताका प्रकाश—इस कथनसे दो बातों पर प्रकाश होता है एक तो यह कि सब अनित्य है। सभी परमाणु तेरे ग्रहणमें आये और अब नहीं रहे, ऐसे ही आज जो परमाणु तेरे शरीररूप हैं ये भी न रहेंगे, विनश्वर हैं सब कुछ। दूसरी बात प्रकाशमें यह आती है कि तू किसमें ममत्व करता है? यह शरीर जो तुझे आज मिला है ऐसे शरीर अनन्त बार तुझे मिले हैं और तेरे नहीं रहे, तू किनमें ममता करता है? कुछ दिन रहेगा यह शरीर। उतने दिन जो इसके

प्रति ममताका परिणाम है वह परिणाम कितना कर्मोंका बन्धन कर रहा है? शरीर तो न रहेगा साथ, पर चिरकाल तक ये कर्म बंधे रहेंगे और इससे फिर परिणामोंकी परम्परा बनी तो यों ही संसार परिभ्रमण करते रहना पड़ेगा। इस कारण हे भ्रातः! तू सच जान कि इस लोकमें ऐसा परमाणु कोई भी नहीं बचा है जो परमाणु तेरे शरीररूप न हुआ हो और आहारपनेको प्रान्त न हुआ हो। भोगोंमें भी मत दृष्टि दे। जो भोगा है आहाररूप या अन्य उपभोगरूप वह सब अनेक बार भोगा जा चुका है, उसमें सारकी बात लेश नहीं है।

सुरोरगनरैश्वर्यं

शक्रकार्मुकसन्निभम्।

सद्यः प्रध्वंसमायाति दृश्यमानमपि स्वयम् ॥८५॥

ऐश्वर्यकी इन्द्रधनुषवत् क्षणविनश्वरता—इस जगत्में देव, उरग, मनुष्य इनका ऐश्वर्य भी इन्द्रधनुषके समान अतिचंचल है। केवल ये ऊपरसे सुहावने दीख पड़ते हैं, परन्तु देखते-देखते ही नष्ट हो जाते हैं। कभी थोड़ेसे बादलोंमें इन्द्रधनुष दिखाई देता है। कितना बढ़िया आकारका होता है कि जरा भी लाइन नहीं बिगड़ती, कितना सुहावना लगता है? कितना सुन्दर मालूम होता है पर वहाँ जाकर कोई छूकर देखे क्या है? कुछ भी नहीं है और देखते-देखते ही थोड़ी देरमें नष्ट हो जाता है, विलीन हो जाता है। है वहाँ कुछ भी नहीं। कुछ सूर्यका योग्य सन्निधान पाकर इन्द्रधनुषके रंग-रूप परिणमनके योग्य बादलोंका सद्भाव हो तो उस समय ये स्कंध ही उस रंग-रूप हो जाते हैं। जो बादल जरासी देरमें बिखरने वाले हैं, वहाँ अन्य कुछ बात नहीं है। कैसा विचित्र परिणमन है? जो बात किसी पुरुषके समझमें नहीं आती उसमें निमित्तनैमित्तिकपना कैसा है? विज्ञानकी बात ध्यानमें नहीं आती तो लो अमुकने मेरा यों किया है यो कल्पना बना ली जाती है। तो जैसे इन्द्रधनुष देखनेमें ही सुहावना है, अतिचंचल है, विलीन हो जाता है, ऐसे ही ये दृश्यमान् समस्त ऐश्वर्य स्वयं विलयको प्राप्त हो जाते हैं।

तीनों लोकोंके ऐश्वर्यकी विनश्वरताका निरूपण—इस श्लोकमें ऐश्वर्य बताते समय तीनके नाम लिए गए देव, उरग और मनुष्य। उरग नाम हैं यद्यपि नागकुमार जातिके देव, फिर भी उपलक्षणसे सब भवनवासी देव और व्यन्तर देव भी ले लेना चाहिये और इस तरहसे अब इसका अर्थ यह हुआ कि ऊर्ध्वलोकके तो हुए सुरेन्द्र और मध्यलोकके हुए चक्रवर्ती और अधोलोकके हुए भवनवासी आदिक इन्द्र, ऐसे तीनों लोकोंके इन्द्रोंका भी ऐश्वर्य केवल देखनेमें रम्य किन्तु इन्द्रधनुषके समान चंचल, शीघ्र विलयको प्राप्त हो जाता है।

समागत अचेतन पदार्थोंकी असारता—अपने-अपने पाये हुए ऐश्वर्यकी भी बात निरखलो। अचेतन पदार्थोंमें भी यी बात है। यह वैभव धन, मकान, ऐश्वर्य, ये सब केवल देखनेमें सुहावने लगते हैं। ठोस कुछ नहीं हैं। आत्माको शान्ति पहुँचाने वाले ये कुछ भी नहीं हैं। ये तो केवल देखनेमें सुहावने लगते हैं पर शान्ति प्राप्त करने लायक इनमें कोई बात नहीं है। प्रायः ऐसा भी होता कि अपना ऐश्वर्य

इतना सुहावना नहीं लगता जितना कि दूसरेका ऐश्वर्य सुहावना लगता, क्योंकि प्राप्त वस्तुमें तृष्णा नहीं जगती, अप्राप्त वस्तुको तृष्णा हुआ करती है। जो ऐश्वर्य दूसरोंके पास जो वैभव अन्य लोगोंके अधिकृत है उस पर चाह रहती है, ऐसा और मुझे हो। ये वैभव बारहसे सुहावने लगते हैं, यदि वे ही अपने निकट आ जायें तो उतने सुहावने फिर नहीं रहते। मोहका कितना विचित्र परिणामन है कि प्राप्त और अप्राप्त सभी चीजें इसे सुन्दर जंचती हैं, किन्तु वे सभी चीजें सारहीन हैं, क्षणभरमें ही विलय को प्राप्त हो जाती हैं।

चेतन पदार्थोंकी विनश्वरता—चेतन पदार्थोंमें देखो पुत्र, मित्र, स्त्री, बान्धव सभी लोग जब कुछ थोड़ी रागभरी कल्पनामें बढ़ जाते हैं तो ये बड़े सुहावने लगते हैं। जब कुछ मूढ़ता कम होती है तो उसे स्वयं प्रतीत होता है कि ये सब सारहीन हैं, इनमें कुछ तत्त्व नहीं है। वहाँ दो ही तो बातें हैं जीव और शरीर। शरीर तो निःसार ही है, हाड़, मांस, खून, चाम, पसीना, मल, मूत्र इन सभी अशुचि पदार्थोंका पिण्ड है। रही चेतनकी बात। वे चेतन भी कषायोंसे भरे, स्वार्थवासनासे सहित अपनी ही अपनी गरज चाहने वाले, इस प्रकार वे भी पाप मलीमस हैं। यों वहाँ भी कुछ सार नजर नहीं आता। ये सभी वैभव, सभी ऐश्वर्य इन्द्रधनुषकी तरह सारहीन हैं। वे देखते-ही-देखते विलयको प्राप्त हो जाते हैं।

मेघवत् ऐश्वर्यकी क्षणभंगुरता—पुराणोंमें आया है कि एक राजा छत पर बैठा हुआ बदलोंकी शोभा देख रहा था, तो कुछ बादलोंकी टुकड़ी बहुत बढ़िया मंदिरके आकारकी बनी हुई थी। उसका बहुत ही सुन्दर आकार था। सोचा कि इस नक्शेका मैं एक मंदिर बनवाऊँगा, मैं इसका चित्र उतारूँ। तो वह अकेला ही बैठा था। नीचे आया कागज पेन्सिल फटा वगैरह चित्र बनानेके सामान लेने। ज्यों ही नीचेसे सामान लेकर ऊपर गया देखा कि सारे बादल इधर-उधर बिखरे हुए हैं। बादलों का बना हुआ मंदिर बिघट गया था। यह दृश्य देखकर उस राजाको वैराग्य हो गया। जैसे ये बादल देखते-देखते ही बिखर जाते हैं, ऐसे ही यह समस्त ऐश्वर्य देखते-देखते ही विलीन हो जाता है।

जीवनके सुखका असारपना—भैया! क्या है जीवका सुख? छोटे हैं; बच्चे हैं, तब उस स्थितिके योग्य कल्पनामें सुख मानते हैं। साथ ही साथ अनेक दुःख भी लगे रहते हैं। मां है, पिता है, दादी है, बस कुछ है, लो थोड़े ही दिनों मे वे गुजर गए, अब रोना पड़ेगा, रो रहे हैं। इस जीवनमें कितनी ही बार रोना हुआ और कितना ही बार इसने मौज माना। न यह मौज रहा, न रोना रहा। फिर मौज हुआ फिर रोना रहा। यों मौज मानने और रोनेका चक्र चलता रहता है। इसीके मायने जीवन है। जीवन और क्या वस्तु है?

सारभूत जीवन—सारभूत जीवन तो वह है जहाँ ऐसा अटल विशुद्ध ज्ञान उत्पन्न हो जिस ज्ञानके होनेपर धैर्य रहे, गम्भीरता रहे, ज्ञाताद्रष्टा रह सकें, क्षोभ न आये, यह हुआ लो यह ठीक है, यह न हुआ लो यह भी जान लिया। जैसा जो कुछ है उसके मात्र जाननहार रहें। अपने स्वरूपपर

इसका पूर्ण अधिकार रहे ऐसे प्रवर्तनका जो जीवन है धन्य जीवन तो वह है। इस ऐश्वर्यमें मौज मनानेवाला जीवन क्या जीवन है? यह सब शीघ्र ही विनाशको प्राप्त हो जाता है।

अजायबघरमें अपनायत करनेका निषेध—इस ऐश्वर्यको अनित्य समझकर हे मोक्षके इच्छुक पुरुषों! इस अनित्यमें अपने उपयोगको मत फँसाओ। जैसे लोग अजायबघर देखने जाते हैं तो वहाँ केवल देखते ही हैं ना। किसी चीजको उठाते तो नहीं। यदि किसी चीजको उठाने लगें तो वहाँके कर्मचारी उसे गिरफ्तार करके दण्ड देंगे। ऐसे ही यह संसार पूरा अजायबघर है। इस छोटेसे अजायबघरमें तो लोग टिकट लेकर देखने जाते हैं। अरे उस अजायबघरसे भी बड़ा अजायबघर यह सब संसार है जो आँखों भी दिखता है। आखिर अजायबघरमें यहाँके चित्र विचित्र जीवोंको ही तो देखते हैं। क्या यहाँ विचित्र-विचित्र जीव देखने को नहीं मिलते? वहाँ जो कुछ देखनेमें आता है वह सब है। किसी पर इस दृष्टाका अधिकार नहीं है। ऐसे ही यहाँ जो कुछ देखनेमें आता है वह सब अनधिकृत है। इन पर हम आपका कोई अधिकार नहीं है। इस अजायबघरमें हम किसी भी वस्तुको यदि ग्रहण करते हैं, राग करके, ममता करके उसे अपनाते हैं तो उसका फल है कर्मबन्धसे बँध जाना, गिरफ्तार होना और फिर दण्ड पाना। इस इन्द्रधनुषके समान अति चंचल ऐश्वर्यको निरख कर हे आत्मन्! तू प्रीति मत कर।

**यान्त्येव न निवर्तन्ते सरितां यद्वर्त्मयः ।
तथा शरीरिणां पूर्वा गता नायान्ति भृतयः ॥८६॥**

अतीत समयका पुनः अमिलन—जिस प्रकार नदीकी लहरें जो निकल गयीं सो निकल गयीं, जो बह गयीं सो बह गयीं, वे फिर लौटकर नहीं आतीं, इसी प्रकार जीवकी विभूति जो नष्ट हुई सो हुई, वह नष्ट होनेके बाद फिर लौट कर नहीं आती। इष्टवियोगज आर्तध्यानमें और होता ही क्या है? इष्टका वियोग होने पर उसके संयोगके लिए ध्यान बनाना यह इष्ट वियोगज आर्तध्यान है। इष्टका वियोग हो गया, हो गया, अब उसमें आर्तध्यान कब बनेगा? जब कि विमुक्त इष्ट पदार्थका संयोग चाहा जाय। यह मिल जाय, फिर आ जाय, ऐसा ध्यान बनायें, इच्छा बनाये तब ही तो आर्तध्यान बनता है। कुछ लोग तो बाहर भी देखने लगते मरे हुए उस पुरुषके प्रति जिस गलीसे रोज आया करता था सामनेसे भोजन करनेकेलिए, उस गलीकी ओर देखते हैं शायद आ जाय। यों आता था, यों क्यों न आ जाये? यों आ जाना चाहिए आदिक कल्पनाएँ बनाते हैं। अरे जो गुजर गया वह पुनः नहीं आता। उसके लिए खेद करनेकी ही बात नहीं बल्कि जब तक संयोग था तब तक उसका हर्ष करना भी व्यर्थ रहा।

विवेककी समझ—कभी तो घटना गुजरनेके बाद विवेक आता है। कहते हैं ना कि किसीमें बुद्धि २ मिनट बाद ही आ जाती है यथार्थ समझकी। किसीके १५ मिनट बाद आती है, किसीकी १ घंटे बाद अकल ठिकाने होती है। तो यह सब क्षयोपशमकी विभिन्नताकी बात है और मोहनीयके

क्षयपशमकी विशेषताकी बात है। वियोग हो जाने पर तो यह खूब समझमें आ जाता है कि संयोगके समय जो इसने हर्ष माना था, वह सब व्यर्थकी बात रही तत्त्वकी, सारकी बात वहाँ कुछ न थी। सोच लो अपने आपमें। जिसके प्रति आपका अधिक प्रेम था वह अब नहीं रहा तो उसके सम्बंधमें आप यों स्पष्ट परख सकते हैं कि हमने जो उसके प्रति अनुराग किया था, बहुत राग रहता था हर्ष मानते थे, वे सब व्यर्थकी बातें थीं। ध्यानमें वियोगके बाद यह बात समाती है। काहेका हर्ष करना और काहेका विशाद करना?

अतीतके विषादकी व्यर्थता—भैया! पर्वतसे गिरने वाली नदीका वेग जो निकल गया वह फिर लौटकर कभी नहीं आता ऐसे ही हमारे परिणमनमें जो वेग निकल आया है, तरंग निकली हैं वह गुजर गयीं, वह पुनः लौटकर नहीं आतीं। ऐसा समझकर इष्ट पदार्थोंके वियोगमें विषाद मत करो। यह तो होती ही है, ऐसा तो जगत्में हुआ ही करता है।

क्वचित्सरित्तरंगाली गतापि विनिवर्तते।

न रूपबललावण्यं सौन्दर्यं तु गतं नृणाम् ॥८७॥

अतीत रूपादिकके पुनः लाभकी असम्भवता—कदाचित् नदीकी लहर लौट भी आये यह भी सम्भव हो सकता है, परन्तु मनुष्यका गया हुआ रूप, बल और सौन्दर्य यह फिर नहीं आता। नदीमें लहर उठती है, वह तो गयी, कदाचित् वायुका वेग पुनः दूसरी ओरसे लौटकर आये तो थोड़ा-बहुत वह लहर खिसक भी सकती है, पर गया हुआ रूप, बल सुन्दरता ये फिर नहीं आते हैं।

रूपादिकी विनश्वरतापर एक पौराणिक उदाहरण—सनतकुमार चक्रवर्तीकी कथा बहुत प्रसिद्ध है। स्वर्गमें चर्चा हुई कि सुन्दरतामें सनतकुमार चक्रवर्ती अद्वितीय है। देव देखने गए। उस समय वह सनतकुमार अखाड़ेमें लड़ भिड़कर धूलसे धूसरित शरीरको नहानेके लिये बैठे हुए थे। देव देखकर खुश हुए। वहा जैसा सुनते थे वैसा ही सुन्दर शरीर है। तो कोई बोला अभी क्या देखते हो चक्रवर्तीकी सुन्दरता? जिस समय-सजे सजाये सिंहासन पर राजदरबारमें बैठे हों उस समय इनकी सुन्दरता देखो। अच्छा वहाँ भी हम देखने आयें। फिर क्या था दुग्ने-तिगुने शृंगारसे सनतकुमार चक्रवर्तीको सजाया गया। कभी आप बन ठनकर फोटो उतरवायेंगे तो फोटो अच्छी न आयेगी और सहज साधारणरूपसे फोटो उतरवायें तो वह ठीक आयेगी। तो जब सजे सजाये सनतकुमारको सिंहासन पर बैठा हुआ देखा उस समय देवता लोग माथा धुनते हैं और कहते हैं हाय! वह रूप तो अब नहीं रहा। लोग कहने लगे कि यह क्या कह रहे हो? तो उस समय उन्होंने दृष्टान्तके रूपमें पानीका भरा घड़ा मंगवाया, फिर उसमें एक पतली सीक डुबोई और सीकमें अंतिम एक बूँद लगी रही उसे जमीन पर गिरा दिया और लोगोंसे कहा बतलावो यह घड़ा कुछ रीता हुआ या नहीं? तो लोग बोले हाँ इसमें एक बूँद कम हो गयी है। तो ऐसे ही यह रूप भी, यह सुन्दरता चली गयी। क्या वे भी कभी आजके लड़की लड़कों जैसे सुन्दर न थे? अरे आजके जो युवावस्था सम्पन्न लड़का-लड़की

हैं ऐसे ही सुन्दर तो वे भी थे। तो जो रूप गया, सुन्दरता गयी, बल गया वह फिर नहीं आता।

रूपकी मायारूपता—भैया! रूपमें क्या चीज है? कुछ मिलने वाली बात है क्या? किसीका रूप पकड़कर मुट्ठीमें रख लीजिए अथवा जेबमें धर लीजिए खूब सुहावना लग रहा है ना, सो उसे बार-बार जेबसे निकालकर देख लीजिए। अरे यह रूप कुछ चीज नहीं है। जो रूप है उसे टटोलकर देखो, वहाँ कुछ भी चीज न मिलेगी। यह सब इन्द्रजालवत् है।

बलकी विनश्वरता—बलकी बात भी क्या है? यह शरीरका बल। यद्यपि यह बल भी आत्माके कुछ बलका क्षयोपशम हुए बिना नहीं होता। लेकिन शरीरबलसे आत्मबलका अनुपात न निकालना। भैंसा ८० मनका वजन खींच दे इतना बलिष्ठ होता है। १० मनुष्योंको खींचकर ले जाय उसके गलेमें रस्सी पड़ी हो तो इतना बलवान् भैंसा होता है और ८ वर्ष का बालक उसे हांके, टिटकारे, मारे पीटे, जहाँ चाहे ले जाये। तो उस भैंसेमें आत्मबल कहाँ है? इस ८ वर्षके बालकमें आत्मबल है जो ऐसे बलिष्ठ भैंसेको भी जहाँ चाहे ले जाता है। यह बल भी क्या है, यह बल भी प्रतिक्षण विनश्वर है। जो व्यतीत हो गया वह पुनः लौटकर नहीं आता।

विनश्वरोंकी प्रीतिसे हटकर—कान्ति और सुन्दरता ये दोनों भी विनाशीक हैं। आकार-प्रकार सुहावना होना सो तो सुन्दरता है और वहाँ दीप्त होना सो लावण्य है। ये दोनों ही विनश्वर हैं। जो व्यतीत होता है वह पुनः लौटकर नहीं आता। यह प्राणी व्यर्थ ही इस विनश्वर वैभवकी आशा लगाये रहता है। हे आत्मन्! तू इन सबको विनश्वर जानकर इनकी आशा मत कर। इनमें अपेक्षा करके अविनाशी सहज निज अंतस्तत्त्वकी उपासना कर। मैं ज्ञानास्वरूपमात्र हूँ, इस भावनामें हीन रहा कर।

गलत्येवायुरव्यग्रं हस्तन्यस्ताग्बुवत् क्षणे।

नलिनीदलसंक्रान्तं प्रालेयमिव यौवनम् ॥८८॥

आयुकी गलन—जीवोंकी आयु तो अंजुलीमें रक्खे हुए जलकी तरह क्षण-क्षणमें निरन्तर झरती है और जवानी कमलिनीके पत्र पर पड़े हुए जलकणकी तरह तत्काल ढलक जाती है, फिर भी यह स्थिर रहे ऐसी इच्छा करता है। इस श्लोकमें आयु और जवानी की अनित्यता पर विचार किया है। अंजुली अंगुलियोंकी गोल कटोरीको कहते हैं। जैसे उसमें रखा हुआ पानी झरता जाता है ऐसे ही इस देहमें बसे हुए जड़, साथ लगे हुए ये आयुकर्म, इनके निषेक प्रतिक्षण झरते जाते हैं और जैसे कोई बात घटे तो अंजुलीका पानी एकदम भी झर जाता है ऐसे ही आयुकर्मकी उदीर्णा चले तो आयुकर्म सबका सब अन्तर्मृतमें ही झड़ जाता है। ऐसा तो है आयुका चरित्र। जिस आयुकी जीव वाञ्छा करते हैं, प्रत्येक जीव जीना चाहते हैं, एक नरकगतिक ही जीव ऐसे हैं जो जीना नहीं चाहते हैं, पर शेष सभी संसारी जीव अपना जीवन चाहते हैं। मरणका भय रहता है, आयुके विनाशको नहीं चाहते। लेकिन यह आयु किसीके रोके नहीं रुकती है। कैसी भी कोई कलायें बनाये, पर किसीकी आयु स्थिर नहीं रह सकती है। लेकिन यह मोही प्राणी उस आयुको स्थिर करना चाहता है।

यौवनकी अस्थिरता—यौवन भी क्षणविनश्वर है। यौवन क्षण मात्रमें ढलक जाता है। जवानीके १० वर्ष जिनमें युवावस्थाका जोर रहता है कैसे निकल जाते हैं? कुछ पता नहीं पड़ता जैसे कमलिनीके पत्र पर पड़ी हुई बूँदें ढलकती रहती हैं, वे स्थिर नहीं रह पातीं, इस ही प्रकार यह यौवन किसीके स्थिर नहीं रह पाता, किन्तु मोही प्राणी इस यौवनको सदा स्थिर रखना चाहते हैं। जो जीवका किया हुआ हो सकता है उसे तो जीव करना नहीं चाहता और जिस पर इस जीवका अधिकार नहीं है, निमित्तनैमित्तिक योगसे हो रहा है, ऐसी अनहोनी बात का जो इसके अधिकारमें नहीं है उसकी यह इच्छा कर रहा है।

जीवके वशकी बात—जीवका वश है अपने आपके सहजस्वरूपकी भावना और सहजस्वरूपमें मग्न होने पर। इसमें किसी भी परवस्तुकी आधीनता नहीं है। पैसा हो तो हम अपने इस आत्मधर्मको कर सकें ऐसी होड़ नहीं है। बल्कि पैसों पर दृष्टि हो तो यह जीव आत्मधर्मको कर भी नहीं सकता है। इतना सुगम और स्वाधीन निज सहज काम तो इस जीवको कठिन लग रहा है और जिस पर अपना अधिकार नहीं वैभव जब आए, जितना आए, जैसा आये जब आय, जैसा जाय, जाय। जिस पर जीवका अधिकार नहीं उसको यह स्थिर करना चाहता है। यह भी सबसे बड़ी कठिन समस्या है। यह विपदा जीव पर है। हे आत्मन्! यदि आत्म-शान्ति चाहते हो तो अब निज सहजस्वभावके ग्रहण रूप स्वाधीन सुगममें लगे।

मनोज्ञविषयैः सार्धं संयोगाः स्वप्नसन्निभाः।

क्षणादेव क्षयं यान्ति वञ्चनोऽद्भुतवैभवः ॥८९॥

विषयोंकी कल्पिता व क्षणक्षयिता—ये मनोज्ञ विषय जिनके साथ यह थोड़ा संयोग हो रहा है यह सब संयोग स्वप्नके समान हैं। क्षण मात्रमें नष्ट हो जाता है। जिसकी बुद्धि ठगने उद्यत है ऐसे ठगोंकी नाई ये विषय भोग समागम थोड़े काल चमत्कार दिखाकर फिर इस जीवका सर्वस्व हरण करने वाले हैं। इन इन्द्रिय विषयोंके प्रति इस श्लोकमें दो बातें दर्शायी हैं, एक तो यह कि इन विषयोंका सम्बन्ध इनकी प्राप्ति स्वप्नके समान है; जैसे कोई जीव स्वप्नमें जो चाहे वैभव निरखता है, पर वह वैभव सब इस जीव को वहाँ प्राप्त नहीं है, केवल एक स्वप्नमें दिख रहा है, जग जाने पर फिर वह वैभव कहाँ रहता है और उस स्वप्नके कारण जग जानेपर भी इसे क्लेश भोगना पड़ता है; जैसे स्वप्न में बड़ा वैभव दीखा, निद्राभंग हुई, अब उस वैभवके न दिखनेसे यह कुछ तो कष्ट मालूम ही करता है। चाहता है कि पहिले जैसी नींद फिर आ जाय और वही वैभव फिर मुझे मिल जाय। तो जैसे स्वप्नमें वैभव है नही, केवल कल्पित है, इसी प्रकारसे ये विषय समागम कुछ तत्त्वभूत नहीं हैं, केवल एक कल्पित हैं। एक बात तो विषयोंके सम्बन्धमें यह बतायी, दूसरी बात जिसका विषयोंके सम्बन्धमें संकेत किया है उसे सुनिये।

विषय ठग—ये विषय महा ठग हैं। जैसे ठग लोग कुछ थोड़ासा वैभव दिखाकर, कुछ फुसला कर, कोई आशा दिखाकर अथवा कुछ लोभ देकर अन्तमें उस व्यक्तिका सर्वस्व हर लेते हैं इसही प्रकार ये विषयभोग इस जीवको कुछ-कुछ चमत्कारसा दिखाकर कुछ बड़प्पनसा दिखाकर अन्तमें इस जीवका सर्वस्व हर लेते हैं। जिसका ज्ञान हरा गया उसका सर्वस्व हरा गया। जिसका श्रद्धान बिगड़ गया उसका सर्वस्व बिगड़ गया। ये इन विषय भोगोंके समागम केवल दुःख ही दुःख बनाते हैं और इन विषय सुखोंके प्रसंगमें सुख तो राई भर होगा, किन्तु दुःख मेरूपर्वत बराबर है। इस संसारमें कौनसी स्थिति ऐसी है जिसमें रहकर हम सुखी रह सकें? यह संसरण ही समस्त दुःखमय है। तो ठगियोंकी ही भांति ये विषयसमागम कुछ थोड़ा सुख, थोड़ा मनोरञ्जन यश, नाम, कीर्ति आदिककी कुछ कल्पित घटना ऐसी कुछ कल्पित ऋद्धियां बता-बताकर इस जीवका सर्वस्व हर लेते हैं। विषयोंकी आसक्तिसे इस जीवका ज्ञान स्थिर कहाँ रह पाता है?

जीवका स्वास्थ्य—जीवका स्वास्थ्य तो अथवा जीवका परमप्रयोजन तो सदाकेलिये अपने आपमें स्थित हो जाने में है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य ही इस जीवका परम स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य आत्माका आत्मामें स्थित हो जाना ही है। ये भोग स्वास्थ्य नहीं हैं क्योंकि प्रथम तो ये उपभोग क्षणिक हैं फिर और तृष्णाके सम्बन्ध होने से इन भोगोंके प्रसंगमें शान्ति नहीं रहती। अतः एक आत्माका आत्मामें आत्मस्वरूपका दर्शन होना और इसमें ही सन्तुष्ट रहना, प्रसन्न रहना, इसे ही अपना मानना, ऐसा जो ज्ञानप्रकाश है वह ज्ञानप्रकाश ही इस जीवके हितरूप हैं। ऐसा जानकर हे मुमुक्षुजनों! इन असार भोगोंके लिए आसक्त मत होओ, इन्हें सारभूत मत समझो। इनसे विरक्त होकर अपने आपमें ही लीन होनेका यत्न करो।

घनमालानुकारीणि कुलानि च बलानि च।

राज्यालङ्कारवित्तनि कीर्तितानि महर्षिभिः ॥९०॥

राज्यादि वैभवोंकी तरह क्षणभंगुरता—महर्षिजनों ने इतनी चीजोंकमो मेघमालाकी तरह देखते-देखते विघट जाने योग्य बताता है। एक तो कुल मायने कुटुम्ब। सभी जो वयस्क लोग हैं, उन्हें स्वयं आंखों देखा है। वे कुटुम्बीजन, पुराने लोग देखते-देखते ही विलीन हो गए हैं। यदि किसी घरका कुटुम्ब बना ही रहता, मरण न करना तो आज वह कहाँ समाता? पर ऐसा होता ही नहीं। जो जन्म लेता है वह नियमसे मरण करता है।

ज्ञानीके मरणभयका अभाव—मरण तो अचानक कभी हो सकता था, लेकिन मरणकी कल्पना मनमें आते ही यह जीव भयभीत हो जाता है। आज यह सोचता है कि कहीं मैं २-४ वर्षके भीतर ही गुजर गया तो क्या होगा और यह नहीं जानता कि यदि मैं आजसे १०-२० वर्ष पहिले ही गुजर गया होता तो क्या होता? ज्ञान तो वह है जिसमें यह ज्ञानी-पुरुष सदा मरनेके लिए उद्यत है अर्थात् मृत्यु आती हो तो आये, यह मैं अपने इस शुद्ध अमूर्त ज्ञानस्वरूप निज अंतस्तत्त्वको संभाले रहूँ तो

मेरा कुछ अहित नहीं है ऐसा साहस रखता है और मरणका भय नहीं करता है यह। मैं पूराका ही पूरा हूँ, पूरा ही था, पूरा ही रहूँगा, इसमें किसी दूसरे द्रव्यका कोई वश नहीं चलता, उसका कोई खण्ड नहीं कर सकता। खण्ड करना तो दूर रहा, उसका कोई स्पर्श भी नहीं कर सकता। इस बातका जिन्हें ध्यान नहीं है और बाह्य चीजोंमें ही जिनकी बुद्धि प्रवर्त रही है वे पुरुष कुटुम्बसे मोह करके अपने आपको दुःखी किया करते हैं हाय! यह नहीं रहा, यह मर गया। अरे मर गया तो क्या हुआ? खुदको भी तो कभी मरना है। यह कुल, यह कुटुम्ब, यह समागम मेघमालाकी तरह देखते-देखते विघट जाने वाले हैं।

बलकी विनश्वरता—इसी प्रकार यह देहबल, शरीरकी शक्ति यह भी देखते-देखते ही विघट जाने वाली है। कभी बढ़ गया, कभी घट गया, क्या स्थितियां होती हैं? जो आज वृद्ध हैं वे कुछ थोड़े ही समय पहिले बालक अवस्थामें रहकर आजके बालकों से भी ज्यादा कूदफाँद करते थे। आजके बालकोंमें क्या शक्ति है? जो इन बूढ़ोंके बचपनमें शक्ति थी। कैसा कूदते-फाँदते अपने बलका प्रयोग करते थे। आज स्थिति यह है कि खुद खड़ा नहीं हुआ जाता, खुद लेटा नहीं जाता। बलकी क्या हालत है, जिसे आज बल मिला हुआ है यह बल भी इस जीवनमें रहनेका नहीं है, यह भी मेघमालाकी तरह देखते-देखते नष्ट हो जाता है। ये राज्य, वैभव, ऐश्वर्य, कीर्ति, प्रतिष्ठा ये सब भी मेघमाला की तरह विनष्ट हो जाते हैं।

कीर्ति समृद्धिकी असारता—मानलो कदाचित् कीर्ति फैल गयी तो लोग १०-२० वर्ष तक गुण गा लेंगे और गा लें लोग कुछ वर्ष तक तो इससे जीवको क्या मिला? यह तो अपने परिणाम और अपने भाग्यके अनुसार अपने आपका ही कर्ता भोक्ता होता है। कौन किसका क्या कर देता है? जिन समृद्धियोंके पीछे उपयोग जुटाकर, तृष्णा लाकर, आशा बनाकर अपने आपके प्रभुका घात किया जा रहा है, ये वैभव समृद्धियाँ दुःखके कारण तो बनेंगे पर शान्तिके कारण नहीं बन सकते।

विनश्वरमें विनश्वरकी अदृष्टिसे हानि—यह वैभव धन सम्पदा दिखते-दिखते विनष्ट हो जाने वाली चीज है। धनका बढ़ जाना भी बढ़ा दुःखकारी हो। जितना अधिक धन होता है विघटने पर उतना ही अधिक उससे क्लेश होता है। कम धनके विघटने वाला तो शीघ्र ही सन्तोष कर लेगा, पर अधिक धनके विघटने वाला तो उसके पीछे बहुत दुःखी होगा। अरे धन वैभव न रहा, न सही, यह तो घनमालाकी तरह देखते-देखते ही विलयको प्राप्त हो जाता है। लेकिन यह मोही प्राणी इन क्षणिक पदार्थोंमें व्यर्थ ही नित्यपनेकी बुद्धि करता है। यह मुझे मिला है, मैं इसे ऐसा व्यवस्थित बनाऊँगा, यह मेरे साथ सदा रहेगा, यों नाना कल्पनाएँ करके यह जीव दुःखी हो रहा है।

फेनपुञ्जेऽथवा रम्भास्तम्भे सारः प्रतीयते।

शरीरे न मनुष्याणां दुर्बुद्धे विद्धि वस्तुतः ॥९१॥

शरीरमें सारका नितान्त अभाव—हे अज्ञान पुरुष! अज्ञानमें ही दौड़ मत लगा। कुछ थम और

कुछ परख। देख फेनके पुञ्जको निःसार बताया गया है। उसमें भी सार प्रतीत होता है, किन्तु देहमें कुछ सार नहीं है। तालाबके किनारे पर पानीके फेनका जो ढेर इकट्ठा हो जाता है वह पुञ्ज निःसार माना जाता है। यो समझ लो जैसे जब दूधको बहुत उछालते हैं एक गिलाससे दूसरे गिलासमें तो आधा गिलास ऊपर फेनका उठ जाता है, उसको जब खायें पियें तो मुंहमें क्या रहता है, फिर भी वह दूध फेन हैं, खानेसे कुछ तो उसका स्वाद आयेगा पानीका फेन जो तालाब और नदीके किनारे पर इकट्ठा हो जाता है उस फेनपुञ्जमें क्या सार बात है? कुछ नहीं। कदाचित् फेनपुञ्जमें भी कुछ सार निकल सकता है, किन्तु इस शरीरमें कुछ भी सार नहीं है। फेनपुञ्ज तो बाजारमें बिकता भी है, वजनमें बड़ा हल्का होता है, वह औषधिके काम आता है, तो फेनमें चाहे कुछ सार मिल जाय, लेकिन मनुष्यके शरीरमें तो कहीं भी कुछ भी सार नहीं है। चाम, पसीना, खून, हड्डी और ऐसा बन गया ढाँचा जिसमें ज्ञानी पुरुष तो मुग्ध नहीं होते, पर अज्ञानीको ऐसा लगता है कि यह बहुत सारभूत और सुन्दर वस्तु है। कदाचित् सोनेकी भी कोई मूर्ति बना दी जाय मनुष्यके बराबर, किन्तु इस विषयव्यामुग्ध प्राणीको इस स्वर्णमूर्तिसे अधिक सारवान सुन्दर दिखाई देने वाली चीज यह देह प्रतीत होगी कैसा व्यामोह है?

रम्भास्तम्भवत् शरीरकी असारता—लोग कहते हैं, कुछ देखा भी जाता है कि केले के पेड़में सार कुछ नहीं है, पत्तों पत्तोंका जो समूह है वही केलेका तना है। उन पत्तोंको छीलते जाइये तो वहाँ अन्तमें कुछ न मिलेगा। अथवा उस केलेके थम्भमें भी कुछ पतलासा डंडा मिल जाय अथवा वहाँ भी कुछ सार नजर आये, सूख जाय, राख बन जाय, पापड़ोंके काम आये उसमें भी कुछ बात बनेगी, कुछ सार की बात निकल सकती है जो कि निःसार है, पत्तोंको अलग करते जाइये फिर वहाँ रहता कुछ नहीं है। ऐसे असार केलेके थम्भमें भी कुछ सारभूत बात प्रतीत होगी, पर इस मनुष्यशरीरमें तो कुछ भी सारभूत बात नहीं है। लेकिन यह व्यामोही जीव इस शरीरको ही सर्वस्व सारभूत मानता है। न जीते हुएमें सार है और मरनेके बाद तो इसमें कुछ सार ही नहीं नजर आता। सारा खून पानी हो जाता है, कैसा ढाँचा रह जाता है। यह शरीर भस्म कर दिया जाता है, वहाँ फिर शेष कुछ नहीं रहता, ऐसा है यह निःसार शरीर।

शरीरमें भारपने, असारपने व रम्यपनेकी प्रतीति—करीब-करीब सभी लोग अपने-अपने शरीरको कुछ भार जैसा प्रतीत करते होंगे, लेकिन व्यामोह इतना है कि इसे परशरीर सार और रम्य जंचने लगते हैं। यह मोही प्राणी इस शरीर को वृथा ही सारभूत मानता है। शिक्षा यहाँ यह दी गयी कि यह देह रमण करने के योग्य नहीं है। हे आत्मन्! तू इस शरीरसे अत्यन्त न्यारा अमूर्त ज्ञान और आनन्दका पुञ्ज अपने स्वरूपमें अवस्थित सनातन तू अछेद्य, अभेद्य, अजेय है, अविनाशी, तू अपने इस स्वरूपकी दृष्टि कर जिसकी दृष्टिके प्रतापसे तू अनाकूल रहेगा सदा के लिए पर उपाधियोंका विछोह होगा और तू अकेलेका ही अकेला रहकर अनन्त आनन्दका भोक्ता होगा। जो जीव केवल नहीं

है, अकेवल हैं, परपदार्थोंके सम्बन्धमें बँधे हैं वे ही जीव दुःखी हुआ करते हैं। केवल तो सिद्ध भगवान हैं, अब काहेका दुःख? हे मुमुक्षु आत्मन्! तू इस शरीरमें मुग्ध मत हो। शरीरसे न्यारा केवल तेरा जो निजस्वरूप है उस स्वरूपमें ही रत रह, सन्तुष्ट रह और अपना सहज वास्तविक जो आनन्द है उसका भोगने वाला रह। तेरी निधि तो अमूल्य है, तू अपनी निधिका सदुपयोग कर। इस प्रकार इन विषयोंको निःसार और क्षणिक बताकर इस जीवको सारभूत अविनाशी निजस्वरूपकी दृष्टिमें लगाया गया है।

यातायातानि कुर्वन्ति ग्रहचन्द्राक्रतारकाः।

ऋतपश्च शरीराणि न हि स्वप्नेऽपि देहिनाम् ॥१२॥

शरीरका पुनर्यानाका अभाव—इस लोकमें ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, तारे और ऋतुयें ये सब तो जाते हैं और आते हैं अर्थात् ये निरन्तर गमनागमन करते हैं। आये हैं तो जायेंगे, गये हैं तो आयेंगे, परन्तु जीवका गया हुआ शरीर स्वप्नमें भी कभी लौटकर नहीं आता। उदाहरण इसमें लौकिक दिया गया है। जैसे तो ये ऋतुयें भी जो व्यतीत हो चुकीं वही नहीं आतीं पर ऋतुमें ऋतु सामाय लिया है। बसंत गया है तो अगले साल फिर बसंत आयेगा और ये चन्द्र, सूर्य वगैरह रोज आते हैं, जाते हैं, लेकिन शरीर जो गया वह पुनः नहीं आता। यह प्राणी उन शरीरोंके लिए वृथा ही प्रीति करता है। अनित्य भावनाके इस प्रकरणमें शरीरकी अनित्यता दिखा रहे हैं।

शरीरकी परता, क्षणिकता व असारता—इस मोही जीवका जिस शरीरमें प्रेम है वह शरीर प्रथम तो पर है, आत्मासे अत्यन्त भिन्न है। शरीरका लक्षण पौद्गलिकताकेलिए हुए है और आत्माका लक्षण चैतन्य स्वरूपकेलिए हुए है। पहिली बात तो यह है कि यह शरीर भिन्न है, पर द्रव्य है। दूसरी बात यह है कि यह अत्यन्त क्षणिक है। इसमें क्षण-क्षणमें परिवर्तन होते रहते हैं। बड़ा परिवर्तन तो कुछ समय व्यतीत होने पर विदित होता है, किन्तु उसके भीतर क्षण-क्षणमें परिणमन हो रहा है और की तो बात जाने दो, यह शरीर दिन-रातमें कई रंग बदलता है और ऋतुवोंमें तो रंग बदलता ही है। गर्मीके दिनोंमें शरीरमें निखार होता है, जाड़ेके दिनोंमें देखो तो मुर्दनीसी छाई रहती है। दिनमें देखो रंग कुछ है, दोपहरको रंग कुछ है और शामको रंग कुछ है। कालके भेदसे इसमें रंग बदलते रहते हैं। चिंता, शोक आदिके भेदसे भी यह शरीर रंग बदलता रहता है। यह देह कितना दुर्बल है, कितना बलिष्ठ है और फिर आयुके क्षय होने पर तो यह शरीर सदाकेलिए अलग हो जाता है। यों यह शरीर क्षणिक है। तीसरी बात यह है कि शरीर जहाँसे निर्मित है वहाँसे ऊपर तक देख लो, कहीं सार न मिलेगा।

शरीरमें हितांशका भी अभाव—भैया! जीवको हितरूप अंश क्या है इस शरीर में? वही मांस, लोहू, चाम, मल-मूत्र इत्यादि अपवित्र चीजें भरी हैं। इस शरीरमें कोई भी सारभूत बात नहीं है। इस मनुष्यके शरीरमें, लोकमें, काममें अपने योग्य कोई बात नहीं है। लौकिक दृष्टिसे पशुवोंके शरीरमें व्यवहारके योग्य कुछ बातें मिल जाती हैं, हाथीके दांत, पशुवोंके चाम, हड्डी इत्यादि लोक व्यवहार में काम आते हैं, लेकिन इस मनुष्यके शरीरमें कोई भी चीज लोकव्यवहारमें भी काममें नहीं आती है।

उल्टा मरनेके बाद यह शरीर यदि कहीं पड़ा रहे तो वहाँ बीमारी फैलनेका भय रहता है, सारी दुर्गन्ध वहाँ भर जाती है। यों इस शरीरसे उपद्रव ही आते हैं, लाभ कुछ नहीं होता। तीसरी बात यह है कि यह शरीर निःसार है, ऐसे इस क्षणिक अत्यन्त भिन्न शरीरमें यह जीव वृथा ही प्रीति कर रहा है।

ये जाताः सातरूपेण पुद्गलाः प्राङ्मनः प्रियाः।

पश्य पुंसां समापन्ना दुःखरूपेण तेऽधुना ॥१३॥

सातरूप शरीरवर्गणाओंका दुःखरूपसे सम्पन्नता—हे आत्मन्! इस जगत्में जो पुद्गल स्कंध पहिले जिन प्राणियोंके मनको प्यारे और सुख उपजाने वाले थे वे ही पुद्गल स्कंध अब दुःखके देने वाले हो गये। ऐसी बात अनेक परिस्थितियोंमें हो जाती है। जो पुद्गल वर्गणायें हृष्ट-पुष्ट शरीरके रूपमें आकर इस जीवको सुख देनेके कारण बनी थीं वे ही पुद्गल स्कंध अब किसी रूपमें, फोड़ा-फुंसियोंमें और भी भीतर अनेक रोगोंके रूपमें आकर इस ही भवमें दुःखके कारण बन जाती हैं अथवा यह हृष्टपुष्ट शरीर बालपनमें किशोर अवस्थामें तो पुष्ट था और धीरे-धीरे पेट बढ़ गया तो दुःख देने वाला बन गया अथवा जो पुद्गल स्कंध किसी भवमें सुन्दर शरीरके रूपमें आकर इतना मनःप्रिय थे, वे ही पुद्गल स्कंध आज दुर्गन्धित बनकर मनःप्रिय नहीं रहे। कितनी घटनाएँ ऐसी हैं अथवा अन्यका कोई शरीर जो मित्र और परिवारके रूपमें आकर मनःप्रिय बना हुआ था वह ही पुद्गल स्कंध अब किसी अन्य शरीर रूप शत्रुके रूप होकर वह ही इस मनको अप्रिय हो गया है अथवा इस ही भवमें जिन-जिन शरीरोंसे स्नेह था वे कितना अधिक प्रिय लगते थे, लेकिन आज मन बिगड़ने पर, शत्रुता होने पर वे ही शरीर मनको अप्रिय लगने लगे हैं।

अचेतन वैभवोंका भी दुःख हेतुरूपमें परिवर्तन—यहाँ इन शरीरों की अनित्यताका वर्णन चल रहा है। जगत्में ऐसा कोई भी पुद्गल स्कंध नहीं है जो शाश्वत सुखरूप ही रहता हो। यह तो जीवग्राह्य शरीरकी बात कही गई है। अब धन, वैभवकी बात ले लो। जो वैभव पहिले मनको प्रिय लगता था, कुछ कारणसे या डाकुवोंकी उस पर दृष्टि लग जानेसे वह ही वैभव अब दुःखरूप जंचने लगा है। इस वैभवको किसी क्षण छोड़ा भी नहीं जा सकता और रखा तो डाकुवोंके द्वारा सताये जानेकी शंका बनी रहती है, लो अब वह वैभव मनःप्रिय नहीं रहा अथवा कभी-कभी यह वैभव भी विपदाका, प्राणाघातका कारण बन जाता है। जब यह स्थिति आती है इस धनके पीछे, डाकू धन भी ले जाय और साथ ही इस धनसे यह भय रहता कि कहीं डाकू लोग आकर पकड़ न ले जायें। कहो वे डाकू साराका सारा धन भी ले ले और प्राणघात भी कर दें तो ऐसी स्थिति आ जाने पर वही धन, वैभव जो पहिले बहुत प्रिय था, अब अप्रिय लगने लगा।

बनी और अनबनका अविश्वास—भैया! इन पुद्गल स्कंधोंसे क्या प्रीति करना, ये थोड़ी देरको भले लग रहे हैं, थोड़ी देर बादमें ये अमंगल जंचने लगेंगे। अरे किससे तू द्वेष करता है? इस समय जो तुझे अप्रिय लग रहे हैं कहो कुछ समय बाद वे ही प्रिय बन जायें। जिस बिरादरीसे जिस

परिवारसे आपकी कुछ अनबनसी रहती हो, कोई संयोग ऐसा हो जाय कहो कि उस ही परिवारके लोग खूब भले जंचने लगे अथवा जिस परिवारसे आपकी खूब बनी थी, उस बनी-बनी हालतमें ही कुछ बात पड़ जाय तो कहो अनबन हो जाय। लो जिस परिवारके लोगोंसे पहिले बड़ा प्रेम था वही परिवार अब अप्रिय लगने लगा। तो यहाँ कौनसे पुद्गल स्कंध विश्वासके योग्य हैं? न यह जीवित शरीर और न यह पुद्गल स्कंध कोई भी विश्वासके योग्य नहीं हैं और न ये रमण करनेके योग्य हैं। उनसे प्रीति हटा और अपने शाश्वत सहजस्वरूपकी ओर दृष्टि दे। यह ही अविनाशी है, सारभूत है और तेरा सहजरूप है।

अनित्यभावनामें साध्य प्रयोजन—अनित्य भावना बतानेका प्रयोजन है अपने नित्यस्वरूप पर अधिकार जमा लेनेका। यदि लक्ष्यकी पूर्ति न करे और परिश्रम बहुत करे तो उसका परिश्रम व्यर्थ है। रसोई बनाये और यों ही सिगड़ी जला जलाकर सारा खाना बनाकर धर दे तो उस खाना बनानेसे लाभ ही क्या है? उसमें तो कोई बुद्धिमानकी बात नहीं है। क्या ऐसा करते हुए किसीको देखा है कि कोई खाना तो बहुत बना डाले और फिर उसे फेंक दे? ऐसा तो शायद न देखा होगा। कोई भी काम हो यह जीव अपने अभीष्ट प्रयोजनकी सिद्धिकेलिये किया करता है। यों ही कोई सबको अनित्य-अनित्य कहता रहे, यह मर गया, वह मर गया, यह नष्ट हो गया, वह नष्ट हो गया, कुछ भी यहाँ नहीं रहनेका है। यों बकता जाय और जो कुछ मैं हूँ उसकी दृष्टि ही न बने तो वह तो उन्मत्त वाणी है। मुकाबलेसे देखोये पौद्गलिक स्कंध भिन्न हैं, विनाशीक हैं, निःसार हैं और यह आत्माका सहज चैतन्यस्वरूप स्व है, अभिन्न है अविनाशी है और सारभूत है। तू इस अनित्यसे उपेक्षा करके निज नित्यमें उपयोग दे, इसकी दृष्टि करके प्रसन्न रहा कर।

वैभव पानेकी क्या खुशी—हे आत्मन्! वैभव पानेकी खुशी मत बना। उसका तो ज्ञाताद्रष्टा रह। उदय था लो यह आ गया। यह भिन्न वस्तु रखी है, ठीक है, वैभव पानेमें खुशी जितनी मानता है यह जीव उससे भी कई गुणी खुशी होनी चाहिये अपने आत्माके स्वरूपका दर्शन होने पर। ओह! यह अलौकिक तत्त्व, यह अलौकिक दर्शन सहज आनन्दघन इस अंतस्तत्त्वका स्पर्श कितनी अलौकिक विभूति है, इसे न पाकर यह जीव अब तक नाना कुयोनियोंमें भ्रमण करता चला आया है। इस अविनाशी सहजस्वरूपकी दृष्टिमें अपने जीवनके लक्ष्यकी पूर्ति मान।

मोहाञ्जनमिवाक्षाणामिन्द्रजालोपमं जगत्।

मुह्यत्यस्मिन्नयं लोको न विद्यः केन हेतुना ॥१४॥

जगत्की इन्द्रजालोपमता—यह जगत् इन्द्रजालकी तरह है। इन्द्रजाल और अलग चीज क्या होती होगी? वर्णन चला आया है। कोई मायावी पुरुष किन्हीं न हुई चीजोंको भी हुई जैसी दिखा दे तो उसे कहते हैं इन्द्रजाल। जैसे बाजीगर लोग होते हैं, वे न हुई चीजको भी हुई जैसी दिखा देते हैं। क्या करते हैं, क्या उनका ढंग है कुछ पता नहीं। किसी दर्शककी टोपी उठाई और खन-खन करके

रुपये गिराने लगते हैं। किसी दर्शकका दुपट्टा ले लिया और उसे हिलाया तो उससे खन-खन करते हुये रुपये गिरने लगते हैं। ऐसा लोगोंको दीखता है। तो कितने ही रुपये खन-खन करके गेर दिये और बादमें खेल दिखानेके पश्चात् वह बाजीगर सबसे एक-एक, दो-दो पैसा मांगता है। अरे अब वह कैसे क्यों मांगता है? जो खन-खन करके गिरते हुए दिखाये वे क्या रुपये कैसे नहीं थे? यद्यपि लोगोंके देखनेमें आया, सुननेमें आया, पर वे कैसे नहीं थे। तो जो है, नहीं है, है जैसा दिखा दे, वही तो इन्द्रजाल है। है कुछ भी नहीं और यहाँ दिखता है कि यह सब कुछ है, यही तो इन्द्रजाल है।

इन्द्रजालका स्वरूप—इन्द्रका अर्थ है आत्मा। इस आत्माके मायारूप परिणमनसे, औपाधिक परिणमनसे जो यह भव मिला है, शकलसूरतें बनी हैं, यह पिण्ड बना है यह सब इन्द्रजाल हैं। अब तो समझ लीजिए कि यह इन्द्रजाल, इन्द्रजालकी तरह है अर्थात् विनाशीक है, कुछ नहीं है तत्त्वभूत, फिर दिखनेमें लगता है कि यह तत्त्वभूत है। शरीरको ही निरख लो, क्या भरा है इसमें? शरीरमें हाड़, खून, मांस-मज्जा, चाम, नाक, थूक, खकार, मल-मूत्र इत्यादि सारीकी सारी अपवित्र चीजें भरी पड़ी हुई हैं और ऊपरसे नीचे तक जो चमड़ी है सजी हुई, जिसमें कुछ कांति नजर आती है, इसमें भी कोई सारभूत बात नहीं है, यह इन्द्रजालकी तरह है, ऐसे ही यह सारा जगत् इन्द्रजालकी तरह है।

मोहनी अञ्जनमें धूल—जैसे किसी पुरुषके नेत्रमें मोहनी अंजन लग जाय तो वह भुलावेमें आ जाता है, अनेक चीजें ऐसी हैं। एक मोहनी धूल ऐसी होती है कि थालमें भोजन सजा दीजिए और उस मोहनी धूलको उस थालके नीचे रख दीजिये तो खाने वाला उस भोजनको अटपट ढंगसे खायेगा। क्या करेगा कि कोई चीज नहीं उठाकर रक्खेगा, कोई चीज कहीं रखेगा, कोई चीज मुंहसे खानेके बजाय कानसे ही खाने लगेगा। जैसे अनेक अटपट बातें हुआ करती हैं। बिल्लीलोटन आदिक अनेक उदाहरण दिए हैं तो जैसे नेत्रमें मोहनी अंजन लग जाय तो वह भुला देता है, इसी प्रकारसे इस जीवमें मोहका अंजन लगा है जिसके कारण यह अपनेको भूला हुआ है। सुखके लिए न जाने क्या-क्या प्रवृत्तियाँ यह करता है। जिस दिन अपने आपके आत्माके अन्तःस्वरूप का किसी प्रकार परिचय पा ले उस दिन अनन्तकालमें आजका यह पाया हुआ जीवन धन्य है।

वैभवमें अनुरंज्यताकी अपात्रता—भैया! जो अपूर्व बात अभी तक कभी नहीं पायी ऐसी अपूर्व आत्मस्वरूपके स्पर्शकी बात उत्पन्न हो जाय तो इससे भी बढ़कर कुछ वैभव है क्या? वैभवके पीछे आज लोग न जाने कितने शंकित हैं? जब इन बाहरी बातों पर दृष्टि दी जाय तो शंका करना उचित और योग्य मालूम होता है, किन्तु जब एक इस आत्मा के सहजस्वरूपपर दृष्टि देते हैं तो ये सब शंकाएँ निःसार मालूम देती हैं। उसका कोई क्या कर लेगा? न उसे कोई छेद सकता, न भेद सकता, न वह पकड़ा जा सकता। यह तो यही है, कदाचित् प्राणांत भी हो जाय तो बिगाड़ क्या हुआ? किसी अन्य जगह इससे भी बहुत विशिष्ट धर्मके और वैभवके वातावरणमें पहुँच जायेंगे। यहाँका पाया हुआ वैभव है कितना-सा? विशुद्ध भाव होगा, पुण्यभाव होगा, धर्मप्रेम होगा, शान्ति रहेगी, तो आजके पाये

हुये वैभवसे लाखों गुना वैभव मरनेके बाद ही तो अधिकृत होगा। कितनी स्वर्ग रचनाएँ हैं, कितनी राज रचनाएँ हैं, कितना बड़ा द्वीप है, कितना मध्यलोक है? सारी रचनाओं पर दृष्टि डालो, जरा सी बातमें यहाँ क्यों मुग्ध हो?

साधु और गृहस्थके दो-दो ढौर—गृहस्थ जीवनमें दो बातोंकी संभाल रखनी है। एक तो गृहस्थीके योग्य लौकिक कार्योंकी संभाल रखनी है और दूसरे अपने आत्मधर्मके कार्योंकी संभाल रखनी है। इन दोनों कार्योंका चलते रहना यही गृहस्थ जीवन है। जैसे कि गुणस्थानमें बताया गया है प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानमें वह झूलता रहता है, किसी एक जगह वह नहीं टिक पाता। अप्रमत्तविरत भी नहीं रहता। जैसे क्षण-क्षणमें अन्तर्मुहूर्त अन्तर्मुहूर्तमें प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान बदलते रहते हैं इसी प्रकार सद्गृहस्थके उपयोगमें लोकव्यवस्था व आत्मधर्मकी संभाल ये दोनों उपयोग बदलते रहते हैं। इसी कारण इस गृहस्थीकी प्रवृत्ति आदर्शरूप बनती है। जो जीव ज्ञानी है उस ज्ञानी जीवके विषयोंकी प्रवृत्तिके समय भी जब संवर निर्जरा करने योग्य प्रवृत्ति रह सकती है तब समझिये इसका कोई भी स्थान हो, निद्राकी भी स्थिति हो। वह विषय प्रवृत्तिसे तो कम खतरनाक प्रवृत्ति है। वहाँ भी यह अपने संस्कारोंके अनुसार अपनी संभाल रखा करता है।

ज्ञानकी अनिर्वचनीय महिमा—ज्ञानकी महिमा ज्ञानियोंके अनुभवमें तो आ सकती है पर वह वचनोंद्वारा प्रतिपादित नहीं हो सकती है। एक सम्यक्त्व पा लिया जाय तो आपने सब कुछ पाया, एक समीचीन दृष्टि ही न मिली और एक लौकिक वैभव इकट्ठा हो गया तो उससे क्या हुआ? अरे वे ढेर पहिले अलग-अलग थे अब इस शरीरसे चिपक गए, इतना ही तो हुआ। धन संचयमें वैभवसंग्रहमें इससे अधिक और क्या हुआ? किन्तु स्वयंका जो स्वरूप है उस स्वरूपका संभालरूप आत्मरुचि बने, सहज आनन्दका अनुभव हो तो उस विभूतिसे बढ़कर कोई विभूति प्राप्त हो सकती है क्या? यह सब एक अनुभवकी चीज है। जैसे खाई हुई मिठाईका स्वाद अनुभवमें तो आ जाता है पर उसे शब्दोंमें क्या बताएँ? दूसरोंके चित्तमें कैसे उतारा जा सके? उसके लिये कोई वचन नहीं है। इसही तरह अपने उस विशुद्ध आनन्दकी बात अनुभवमें तो आ जाती है किन्तु उसे बतानेके लिये कोई शब्द नहीं है। और शब्द भी हैं तो वे शब्द उन ही को बतानेमें समर्थ हैं जिन्होंने इस आनन्दका अनुभव किया है; जैसे मिश्री मिठाईके सम्बन्धमें यह कहा जाय कि यह बहुत मीठी है, सुहावनी है, किन्हीं भी शब्दोंमें कहा जाय तो इसका भाव वही समझ पायेगा जिसने उस मिठाईको चखा है। दूसरा नहीं जान सकता है। तो यह सब प्रयोगसाध्य बात है।

आत्मानुभवके यत्नका अनुरोध—हम इस बात का यत्न करें कि उस तत्त्वकी जिसकी महिमा ऋषि-संतोंने बहुत-बहुत गायी है हम उस रूप अपना श्रद्धान, ज्ञान और आचरण बनाकर उस अंतस्तत्त्वरूप अपना परिणमन बनाकर खुद अनुभव कर लें कि वह आत्मविश्रामका धाम कैसा है? कितना आनन्दमय है? उस आनन्दके अनुभव होने पर सारे संकट इसके दूर हो जाते हैं। सारी बात

भीतरके साहसकी है। जैसे किसी कार्य को करते हुयेमें कभी शिथिलता आये तो भीतरमें साहस जगे तो फिर उसकी पूर्ति कर सकते हैं। सब साहसकी बात है। निजकी और उपयोग जगे तो ऐसा साहस प्रकट होता है कि फिर वहाँ संसारके कोई संकट नहीं सता सकते हैं। हे आत्मन्! तू असार भिन्न, विनाशीक इन पुद्गलस्कंधों से प्रीति हटाकर सारभूत अभिन्न अविनाशी ज्ञानस्वरूपमें प्रतीति कर।

ये चात्र जगतीमध्ये पदार्थाश्चेतनेतराः।

ते ते मुनिभिरुद्दिष्टाः प्रतिक्षणविनश्वराः ॥१५॥

समागत पदार्थोंकी प्रतिक्षण विनश्वरता—इस संसारमें जो भी चेतन और अचेतन पदार्थ हैं वे सब प्रतिक्षण विनाशीक हैं, ऐसा मुनिराजने ताया है। स्वयं भी सामने देख रहे हैं कि ये दृश्यमान् सभी पदार्थ प्रतिक्षण क्षीण होते जाते हैं। कभी उनका रूपान्तर हो जाता है कभी उनकी हानिवृद्धियाँ होती हैं। एक रूप तो कुछ रहता ही नहीं। अनित्य भावनाके इस प्रसंगमें इन पदार्थोंको अनित्य बताकर उनसे उपेक्षा करायी गयी है। तू इन अनित्य पदार्थोंकी प्रीतिमें लीन मत हो, अन्यथा इसका फल कुछ ही समय बाद बहुत बड़ा भुगतना पड़ेगा। जिसके संयोगमें अधिक प्रीति है उसे वियोगके समय अधिक क्लेश भुगतना पड़ता है, अतः हे शान्तिके इच्छुक पुरुष! न तो किसी चेतन पदार्थमें और न किसी अचेतन पदार्थमें तू राग द्वेष कर। इनमें रागद्वेष करना युक्त नहीं है। यद्यपि जितना जो कुछ व्यवहारमें आ रहा है और दृश्यमान् है वह सब अचेतन ही है, किन्तु जो चेतन सत् है, शरीरी है उनको चेतन समझियेगा। वास्तविक परमार्थभूत चेतन तत्त्वसे कौन रागद्वेष करता है? वह चैतन्यस्वरूप जिसकी दृष्टिमें आ जाता है वह तो विशुद्ध ज्ञाताद्रष्टा रहता है। प्रतिक्षण विनाशीक इन भवोंमें और इन अचेतन पदार्थोंमें हे मुमुक्षु! तू मोह और रागद्वेष मत कर।

गगननगरकल्पं सङ्गमं वल्लभानाम्, जलदपटलतुल्यं यौवनं वा धनं वा।

सुजनसुतशरीरादीनि विद्युच्चलानि क्षणिकमिति समस्त विद्धि संसारवृत्तम् ॥१६॥

प्रियजनोंके समागमकी आकाशनगरवत् क्षण भंगुरता—संसार का यह वृत्त क्षणिक है। देखो प्रिय स्त्रीजनोंका अथवा परिजनोंका समागम कोई इन्द्रादिक मायासे आकाशमें बने हुए नगरकी तरह है, जैसे आकाशमें कोई मायामयी नगर बना हो तो उसकी सता क्या, एक थोड़ी ही देर की अथवा दिखावामात्र है वह नष्ट ही होगा, ठहरेगा नहीं। इसी प्रकार यह परिजनोंका समागम ठहरनेका नहीं है। यह तो नष्ट ही होगा। जैसे रास्तागीर लोग चलते-चलते किसी चौहट्टे पर इकट्ठे हो जायें अथवा किसी रास्तेमें मिल जायें तो वे कितनी देर तक ठहरते हैं? थोड़ी देरको। जितनी देर वे जुहार भेंट करें अथवा कोई बीढ़ी, चिलम पीने लगें या कोई अपने इष्ट स्थानका रास्ता पूछने लगें, तो इतनेमें जितना समय लगता है उतने समय तकका वह मिलाप है। फिर बिछुड़ जाते हैं, ऐसे ही अनेक गतियोंसे आए हुये ये परिजन कुछ लोग किसी एक जगह मिल गए हैं तो यह कितने क्षणका मिलाप है? इस अनन्तकालके समक्ष ५०-६० वर्ष क्या गिनती रखते हैं? इस वर्तमान जीवनमें कुछ कल्पनाएँ कर डालें

और कुछ अपनेको वैभववान्, ऐश्वर्यवान्, महान् समझकर एक मौज माने तो यह कितने दिनोंका खेल है? यह सब नष्ट होगा।

वैभवकी विद्युतकी तरह क्षणस्थायिता—यह समस्त समागम आकाशनगरकी तरह शीघ्र ही विनष्ट हो जाने वाला है। यह यौवन और यह धन मेघ बिजलीकी तरह विलीन हो जाने वाला है। धनका तो यह काम ही है। वह एक जगह तो रहता ही नहीं है, यहाँसे वहाँ गया, वहाँसे यहाँ गया, चलता-फिरता रहता है। इसका नाम है चंचला। जो अतिशयसे चलता ही रहे उसे चंचला कहते हैं। यह यौवन भी चंचल है, कुछ शरीर पुष्ट हुआ, कुछ शक्तिमान् हुआ तो यह स्थिति कितनी देरके लिये है? भले ही जब जवानी है तो उन जवानोंको इस ओर ख्याल नहीं आता कि यह कितने दिनोंका जीवन है? यदि उन्हें ख्याल रहे कि यह यौवन अवस्था भी शीघ्र विलीन होगी तो उनके मनमें यह स्वच्छन्दता न रहेगी। जैसे जवानीके जोशमें जो मनमें आता है स्वच्छन्द होकर पापकार्य कर डालते हैं, फिर इससे ऐसी स्वच्छन्द वृत्ति नहीं हो सकती।

यौवनकी मेघपटलवत् क्षणनश्वरता—यह जवानी मेघपटलके समान है। जैसे छत पर बैठा हुआ कोई बादलोंके सौन्दर्यको देख रहा हो, देखा कि यह तो बादलोंका सुन्दर दृश्य है, इसका चित्र खींचना चाहिये। चित्र खींचनेके लिये कागज पेन्सिल लेने नीचे आया और कागज, पेन्सिल लेकर ऊपर पहुँचा, इतनेमें देखता है कि बादलोंका वह सारा समूह विलीन हो गया है। तो जैसे वे बादल देखते-देखते ही विलीन हो जाते हैं ऐसी ही यह जवानी देखते-देखते ही विलीन हो जाती है। जब वृद्ध अवस्था आती है तब तो खूब समझमें बैठ जाता है कि यह जवानी अति चंचल है, क्षणमें ही नष्ट हो जाती है। जवानीके समय भी जवानीकी अनित्यता ध्यानमें रहे यह है पुष्पज्ञानीकी धारणा।

क्षणस्थायित्वका तात्पर्य—यह यौवन और धन मेघ व बिजलीकी तरह लुप्त हो जाने वाले हैं। परिजन, मित्रजन, पुत्र, स्त्री आदिक ये बिजलीकी तरह चंचल हैं। बिजली कितनी देर ठहरती है? कुछ भी समय नहीं। ऐसे ही इस अत्यन्त कालके सामने यह कितना-सा समय है जितने वर्ष ठहर जाय। बल्कि इतनी जिन्दगीके इन ६०-७०-८० वर्षोंके सामने जो एक सेकेण्डको बिजली चमकी वह समय तो नापमें गिनतीमें आ जायेगा, पर अनन्तकालके सामने ये १०० वर्ष भी क्या, करोड़ वर्ष भी गिनतीमें न आयेंगे। यहाँके ये सर्व समागम कितनी देरको हैं, इन सबको क्षणिक समझिये। ऐसी अनित्य अवस्था जानकर इनसे अनुराग मत करो। इनमें नित्यताकी बुद्धि मत रक्खो।

पर्यायदृष्टिसे अनित्य देखनेका प्रयोजन द्रव्यदृष्टिसे नित्यत्वका अवलोकन—इस ग्रन्थमें यहाँ अनित्यभावना समाप्त हो रही है। अनित्य भावनाके इस प्रसंगमें सारभूत तात्पर्य इतना जानना कि यह लोक षट्द्रव्यमय है। ६ प्रकारके द्रव्य, चेतन, अचेतन पदार्थोंका समूह यह लोक है। इसकी द्रव्यदृष्टिसे देखा जाय तो यह नित्य है परन्तु पर्यायदृष्टिसे देखा जाय तो वह उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। अनित्य भावनामें इस बात पर दृष्टि दिलायी गयी है कि तुम इन सब पदार्थोंको पर्यायदृष्टिसे

अनित्य देखो। मोहीजन पर्यायदृष्टि ही तो रखते हैं पर उस ही दृष्टिसे रखते हुये वे नित्य मान रहे हैं। मोहियोंको यह पता नहीं कि हम पर्यायदृष्टिसे देख रहे हैं, वे तो पर्यायको ही सर्वस्व मानते हैं और इस ही पर्यायको नित्य श्रद्धामें लाये हुये हैं। इन संसारी जीवोंको द्रव्यके शाश्वत वास्तविक स्वरूपका तो ज्ञान है ही नहीं, वे तो पर्यायको ही वस्तुस्वरूप मानकर उसमें नित्यपनेकी बुद्धि रखते हैं और इसी अज्ञानवश ममता राग और द्वेष किया करते हैं। उन रागद्वेषोंसे आकुलताएँ होती हैं। उन आकुलतावोंको दूर करना चाहिये, इस ही भावको यहाँ बताते हैं कि भाई पर्यायबुद्धि एकान्त त्यागकर द्रव्यदृष्टिसे अपने स्वरूपको नित्य मानकर और इस अविनाशी चैतन्यस्वरूपका ध्यान करके इस ही स्वरूप में लय होनेका यत्न करो और वीतराग विज्ञानकी दशाको प्राप्त होवो।

अशरण भावना

न सो कोऽप्यस्ति दुर्बुद्धे शरीरी भुवनत्रये।
यस्य कण्ठे कृतान्तस्य न पाशः प्रसरिष्यति ॥१७॥

संसारी जीवोंकी अशरणता—अनित्य भावनाके बाद अशरण भावनाका वर्णन आता है। हे मूढ़ दुर्बुद्धे! तू किसकी शरण चाहता है? इन तीनों लोकोंमें कोई भी जीव ऐसे नहीं है जिनके गलेमें कालकी फांसी न पड़ी हो। तू जिसको शरण समझकर उस शरणमें जा रहा है वह खुद का अशरण है। खूब छान लो, जगत्में जितने भी जीव हं ये सब कालके गलेमें पड़े हुए हैं, कालके मुखमें पड़े हुए हैं। जो स्वयं अरक्षित हैं उनसे रक्षाकी कोई आशा की जा सकती है क्या? जो स्वयं अशरण हैं उनसे अपने शरणकी कोई आशा न रखनी चाहिये। जो स्वयंको शरणभूत हैं वे भी अन्यको शरणभूत नहीं हो सकते। बाह्यमें कहीं भी शरण मत ढूँढो। अपने आपमें अपने आपका ही सहजस्वरूप शरण है, उस स्वरूपके शरणको प्राप्त हो।

अरहंत शरण—चत्वारिदण्डकमें पढ़ते हैं, चत्वारि शरणं पव्वज्जामि। मैं चारकी शरणको प्राप्त होता हूँ। वे चार शरण कौन हैं, जिन को यह भक्त प्राप्त करना चाहता है? प्रथम कहा गया है अहरहंते शरणं पव्वज्जामि। मैं अरहंतोंकी शरणको प्राप्त होता हूँ। अरहंत परमात्मा वीतराग सर्वज्ञदेव हैं। वे देह सहित हैं। परमौदारिक पावन उनका देह है, उनकी दिव्य ध्वनि होती है, लोगोंको उनका दर्शन मिलता है। जो सर्वश्रेष्ठ समागम भव्य जीवको प्राप्त हो सके वह सर्वश्रेष्ठ समागम अरहंत भगवानका दर्शन है। सिद्धभगवानका तो समागम होता नहीं, वे लोक के अन्तममें विराजे हैं और शरीररहित हैं, योगरहित हैं। ये अरहंतदेव विहार भी करते हैं उनकी दिव्यध्वनि भी होती है, उनकी शान्तमुद्राके दर्शन होते हैं। जो वीतराग है केवलज्ञानी है ऐसा आत्मा जिस देहमें विराजमान है उस भगवान्के साक्षात् दर्शन हो सकते हैं। तो बाह्य शरणोंमें उत्कृष्ट शरण जो हमें प्राप्त हो सके, वह है अरहंत भगवानका शरण। उस अरहंत भगवानकी शरणको मैं प्राप्त होता हूँ।

प्रभुस्मरणका प्रभाव—कैसे ही कोई उपद्रवसे ग्रस्त हो, यदि वास्तविक दृष्टिसे अरहंतके स्वरूपमें अपना उपयोग लगाया तो उस स्वरूपके उपयोगसे ये सैंकड़ों बाधायें दूर हो जाती हैं। अरहंत भगवान् परद्रव्य हैं और परके शरणकी बात यहाँ कही जा रही है। यद्यपि इस जीवको परमार्थ दृष्टिसे कोई भी परमार्थ शरण नहीं होता, लेकिन अरहंत भगवानका स्वरूप, इस आराधना करने वाले जीवका स्वरूप स्वभावदृष्टिसे दोनों समान हैं और उपासक जब अरहंत भगवानके स्वरूपपर दृष्टि देता है तो इसे अपने आपके स्वरूपका स्पर्श होता है। भगवान्के स्वरूपपर दृष्टि दे कौन सकता है? किसी भी परपदार्थके स्वरूपपर दृष्टि कौन दे सकता है? प्रत्येक प्राणी जो कुछ परिणमन करता है वह अपने ही प्रदेशोंमें परिणमन करता है। अपने आपके प्रदेशोंमें ही रहकर जो हमारी ज्ञानवृत्ति बनी उस ज्ञानवृत्तिका आश्रय, अर्थात् विषय हुआ अरहंतका स्वरूप। अतः यों कहा जाता है कि हमने अरहंतके स्वरूप पर दृष्टि दी। वस्तुतः वहाँ भी हमने अपने आपके स्वरूपमें ही ऐसा कोई परिणमन किया है, वही शरण बन रहा है, उस शरणमें परपदार्थ विषय है अतएव परके शरणकी बात कही गई है।

सिद्ध शरण—अरहंतोंके शरणकी भावनाके पश्चात् फिर कहते हैं सिद्धे शरणं पव्वज्जामि। मैं सिद्ध भगवान्के शरणको प्राप्त होता हूँ, यद्यपि सिद्ध भगवान् अरहंत भगवानसे भी उत्कृष्ट पदमें हैं, अंतरङ्ग दृष्टिसे तो अरहंत और सिद्ध दोनों समान हैं, केवलज्ञानी, वीतराग, अनन्त, आनन्दमय, जो कुछ भी गुणरूप स्वरूप हैं उस दृष्टिसे तो अरहंत और सिद्धमें समानता है, किन्तु वे और नटखट जो इस प्रभुकी प्रभुतासे पहिले थे वे नटखट, शरीरके बन्धन, कर्मोंके बन्धन अब बने हुये हैं, वे भी दूर हो जायें तो उन्हें सिद्ध भगवान् कहते हैं अर्थात् वीतराग व सर्वज्ञ तो वे अरहंत पदमें ही थे, अब बाह्यमलरहिता, निर्लेपता भी सिद्ध भगवानके हो जाती है, फिर भी यद्यपि सिद्धका उत्कृष्ट स्वरूप है, किन्तु अरहंतके बाद सिद्धके शरणकी बात यों कही गई है कि आखिर सिद्धका पता भी हमें अरहंतों की परम्परासे चला है। उपदेश देने वाले मूलमें अरहंत भगवान् हैं, उनके प्रणीत आगमसे हमें सिद्धका परिचय मिला है। खैर यह दृष्टि भी न करें तो भी चूँकि अरहंत सिद्ध एक ही स्वरूप हैं, कुछ भी कह दो प्रभुके शरणको प्राप्त होता हूँ, इस भावनामें भव्यने एक वीतराग ज्ञायकस्वरूपकी उपासना की है।

साधु शरण—इसके पश्चात् यह भव्य पुरुष कहता है कि 'साहूसरणं पव्वज्जामि, मैं साधुवोंकी शरणको प्राप्त होता हूँ।' मुमुक्षु पुरुषोंका साधुवोंके साथ एक अनूठा सम्बन्ध हुआ करता है, जिस सम्बन्धकी होड़ जिस सम्बन्धकी दशा, जिस सम्बन्धकी उपमा किसी भी सम्बन्धमें नहीं मिलती है। मोक्षमार्गका नाता रखकर साधुवोंका और उपासकका जो सम्बन्ध होता है उस सम्बन्धसे बढ़कर सम्बन्ध इस दुनियामें और कुछ नहीं है। कैसा निष्कपट, मोक्षमार्ग लिये सदाको संकट दूर हो जायें, इस भावनाको लिये हुये गुरुवोंका सम्बन्ध होता है। अरहंत वीतराग हैं पूर्ण रूपसे। वे हमसे बोलते भी नहीं हैं, यद्यपि उनका विहार है, तो भी वे निरीह हैं। उनका उत्कृष्ट शरण है लेकिन सीधा तुरन्त जिसमें इतना काम चले वह तो साधु पुरुष हैं।

सुगम लब्ध व्यवहारशरण—जैसे इस गृहस्थावस्थामें यद्यपि व्यापारके सम्बन्धमें कोई एक बड़ा पुरुष जो बहुत दूर रहता हो और सबके लिये एकसी दृष्टि रखता हो यद्यपि वह बड़ा है लेकिन रोज-रोज काम जिससे पड़े उसके लिये तो वह ही महत्वके लिये हैं। साधुजन प्रायः करके मिलते ही रहते हैं और हम ही जैसे वे हैं और विरक्ति पाकर ज्ञान पाकर जो इतना शान्त और ज्ञानी हैं, आनन्दरत हैं तो उनकी इस प्रवृत्तिको छोड़कर हम पर ज्यादा असर पहुँचता है। जैसे कि पुराणोंमें अनेक उदाहरण हैं। सुकुमालने यों त्यागा, सुकौशलने यों त्यागा, ऋषभदेवनें यों त्याग किया, ठीक है वे सब लोग। आपके ही नगरमें यदि कोई ज्ञानी गृहस्थ ऐसा दीखे कि जो बहुत उदार हो, वैभवमें अनासक्त हो, जराजरासे प्रसंगोंमें मुक्तहस्तसे दान दे और अपने सदाचार की पूर्तिमें विषयोंका त्याग कर दे, ऐसा विरक्त ज्ञानी गृहस्थ हो तो तत्काल उसका प्रभाव पड़ने लगता है। ऐसे ही अरहंत और सिद्ध भगवानका यद्यपि उत्कृष्ट स्वरूप है और अन्तमें उनका ही ध्यान योगीजन भी करते हैं, हमें भी करना होता है, लेकिन हमें तुरन्त कोई शरण मिले, समागम मिले, कुछ अपने दिलकी बात कह सकें, कुछ उनसे सुन सकें ऐसा सुगम उपाय मोक्षमार्गका विधान बन सके ऐसा तो साधुओंमें सम्भव है। तब यह भव्यपुरुष साधुओंका शरणवाद करता है ‘साहू शरणं पव्वज्जामि, मैं साधुओंकी शरणको प्राप्त होता हूँ।’

धर्म शरण—यहाँ तक देव और गुरुके शरण पानेकी भावना और कोशिश करके अब यह भव्य जीव तब भी अपने आपमें हो रहे परिणमनकी शरण ही पा रहा था, अब व्यक्तरूपसे माना कि ये सब पर ही हैं। परमार्थसे मैं किसकी शरणको प्राप्त होऊँ? जो सुगम हो, स्वाधीन हो, अपने आपमें हो ऐसी शरण है क्या? उसको चतुर्थ नम्बरपर कह रहे हैं। केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि। केवली भगवानके द्वारा निर्देश किया गया जो धर्म है उसकी शरणको मैं प्राप्त होता हूँ। धर्म कहीं व्यक्तिरूप स्वरूप सत्ता वाला कोई पदार्थ नहीं है, किन्तु जितने भी आत्मा हैं उन आत्माओंमें जो उनका स्वभाव पाया जाता है वही स्वभाव धर्म है। मेरा स्वभाव है प्रतिभास चैतन्य। उसका प्रयोग है ज्ञातादृष्टा रहना। हम केवल जाननहार रहें, यह है, यह यों है, समस्त वैभव परिजन मित्रजन अन्य अन्य जन जो-जो कुछ भी प्रयोगमें आयें उनका जैसा स्वरूप है, ढंग है, उसका मात्र जाननहार रहे, ऐसी ज्ञातादृष्टापनकी स्थितिका नाम है धर्म। मैं इस ज्ञायकस्वभावरूप, शुद्ध ज्ञानविकासरूप धर्मकी शरणको प्राप्त होता हूँ।

सुगम स्वाधीन स्वयं वास्तविक शरण—तो देखो भैया! वास्तविक शरण अपना अपने आपमें मिला और व्यवहारसे जो धर्ममूर्ति है वह देव और गुरुशरण है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई तो शरण कभी हो ही नहीं सकता है। ये संसारीजन स्वयं घबड़ाये हुए हैं, स्वयं अशरण हैं, इनका मैं क्या शरण हूँ। हे मुमुक्षु! सभी संसारी जीव कालके मुखमें हैं ऐसा जानकर किसी भी जीवका तू शरण मत हूँ। अपने आपमें ही अपने शरणकी प्राप्ति कर।

समापतति दुवरि यमकण्ठीरवक्रमे ।
त्रायते तु न हि प्राणी सोद्योगैस्त्रिदशैरपि ॥१८॥

मरणकालमें देवों द्वारा भी अरक्षितता—जब यह प्राणी दुर्निवार कालरूपी सिंहके पंजे तले आ जाता है तब बड़े-बड़े उद्योगशील देवतावोंके द्वारा भी इस प्राणीकी रक्षा नहीं हो सकती। अन्य मनुष्यादिक की तो सामर्थ्य ही क्या है? जिस मनुष्यपर देव प्रसन्न होते हैं उस मनुष्यके प्रति देवका कितना अधिक राग रहता होगा? पुराणोंमें यह कथानक बहुत आया है, अनेक महापुरुषोंकी सेवामें देवगण रहते थे। अनेकों महापुरुषोंकी सेवा देवता लोग स्वयं किया करते थे और अनेक देवता उनके चक्रके स्वामी होते थे, उनकी आयुधशालाकी रक्षा करना आदिक नाना रूपोंमें सेवा किया करते थे। उन महापुरुषोंका भी जब अन्त समय आया तब देवता भी उनकी रक्षा नहीं कर सके। रक्षा कर ही नहीं सकते। ये देव स्वयं अरक्षित हैं। इनकी आयु असंख्यातों वर्षकी होती है, इस कारण इन्हें लोग अमर कहा करते हैं। इनका आहार कंठसे ही जो अमृतसा या कहिये थूक जैसा झड़ता है वही होनेके कारण इन्हें अमृतका पीने वाला कहा करते हैं। पर न तो ये अमृतके पीने वाले हैं और न अमर हैं, असंख्यातों वर्ष गुजर जानेके बाद जब इनका भी काल क्षय होता है तो ये बच नहीं पाते। माताको बच्चा कितना प्रिय होता है? छोटा बालक है, रोगी है, हड्डी निकली है, कुछ देखने योग्य भी नहीं है फिर भी मोह कितना रहता है? गोदमें लिए रहती है, किन्तु गोदमें भी बैठे-बैठे बालकका मरण हो जाता है। उसे कौन बचा सकता है?

बाह्यमें शरणलाभका अभाव—मृत्युके आक्रमणसे आक्रान्त होकर यह जीव शरण ढूँढता है किसीका, पर कहीं इसे शरण मिलती नहीं है। वैद्योंकी सेवा करके भी शरण खोजता है। अपने हितुवोंसे प्रीतिकी याचना करके भी शरण खोजता है। अनेकों शरण ढूँढता है यह, लेकिन इसे शरण कहीं नहीं मिलती। ऐसा यह जगत् अशरण है। सच तो यह है कि जो चीज स्वयं विनाशीक है उसका शरण गहना चाहता है तो शरण मिल कैसे सकेगा? कोई पुरुष परिजनकी शरण समझता है, कोई वैभवकी शरण समझता है, कोई इज्जत और यशकी शरण समझता है। किसी न किसी विनश्वर पदार्थकी शरण लेना चाहता है। बताओ फिर कैसे शरणकी सिद्धि हो सकती है? शरण केवल अपने आपमें सहज अनादि अनन्त विराजमान् एक चैतन्यस्वभावका दर्शन है। वह दृष्टिमें न आये तो कहीं भी उपयोग भ्रमानेसे शरण न मिलेगी।

परमार्थशरणके परिचयकी आवश्यकता—भैया! केवल अशरण अशरणकी रटन लगाकर अपने को दुःखी करना ठीक नहीं है। हाय! मेरा कहीं कोई शरण नहीं। यद्यपि यह भी एक धर्मध्यानका अंग है। न मुझे घर शरण है, न कुटुम्ब शरण है, न मित्र शरण हैं, न ये विषयभोग शरण हैं, न ये सांसारिक सुख शरण हैं, सोचते जाइय, अच्छी बात है, लेकिन शरण असलमें है क्या? इसका पता नहीं है, तो उसके हर जगह रोना ही रोना है। अशरण भावना उसकी नहीं बन सकती जिसे अपने

शरणका परिचय नहीं है। बाहरमें प्रत्येक पदार्थ नाम लेकर कोई अशरण अशरण कहता जाय। उसकी अशरणभावना नहीं है, वह तो एक खिसियाहट है। दुःखी हो गए चैन न मिला, लो कहने लगा कि यहाँ कौन किसका है, बाह्यमें कुछ भी शरण नहीं है। इस चिन्तनमें बल तब आता है जब अन्तरमें यह बल पड़ा हुआ हो कि मैं स्वयं सशरण हूँ, मैं स्वरूपसे अमित हूँ, मुझे कहाँ क्या अधूरापन है, मैं पूर्ण सत् हूँ और स्वभावसे ज्ञानानन्दघन हूँ। ऐसा अपनी शरणका जिसे बल मिला हो वह बाह्य पदार्थोंका नाम ले लेकर यह अशरण है, यह अशरण है। इस प्रकारकी भावना करता है। सेना हो, परिजन हो, देवीदेवता हों, माता पिता हों, बड़े प्रेमी रिश्तेदार हों, मरते समय इस जीवका कोई राखनहार नहीं हो सकता, ऐसी भावना यहाँ अशरण भावनामें भायी जा रही है।

**सुरासुरनराहीन्द्रनायकैरपि
जीवलोकं क्षणाद्धैन बध्नाति यमवागुरा ॥१९॥**

यमका फन्दा—इस कालका ऐसा विकट फंदा है कि यह क्षणमात्र में जीवोंको फांस लेता है। इस कालके फंदेका निवारण सुरेन्द्र, असुरेन्द्र, नागेन्द्र बड़े-बड़े नायक कोई भी निवारण नहीं कर सकते। एक कल्पनासे विचार करो। मृत्युका, आयुक्षयका नाम यमराज है। यह यमराज शब्द बहुत प्रसिद्ध शब्द हैं काल कहो, यमराज कहो, ये सब आयु क्षयके नाम हैं। किसी भी भावका मूर्तिमान् रूप रखना, पुरुषवत् उसमें व्यवहार करना यह एक अलंकारकी पद्धति है और उस ही पद्धतिमें नाना देवी-देवताओंके भी रूप बन गए। यों ही यमराज एक शब्द है जो बहुत प्रसिद्ध है।

यमकी समान दृष्टि—यह यमराज इतनी समान दृष्टि वाला है, इतना पक्षपातरहित है कि इसकी निगाहमें सब संसारी जीव एकसमान हैं। वह न तो यह पक्ष रखता कि यह छोटा बालक है, बड़ा रंगा-चंगा है, बड़ा सुन्दर लगता है इसे न खावें और यह बूढ़ा है, बेकार है, गरीब है इसे खा लें। ऐसा रागद्वेष, ऐसा पक्षपात यमराज के नहीं हैं उसकी दृष्टिमें सब एक समान हैं। गर्भमें रहने वाला बालक हो, जवान हो, बूढ़ा हो सब पर उसका एक समान बर्ताव है। जिस किसीको भी खा ले, अर्थात् किसी भी जीवकी कभी भी मृत्यु हो जाय। यह एक अलंकारमें समझिए। इसके फंदेका, आयुक्षय हो जाने पर मरणका निवारण करनेमें कोई समर्थ नहीं है। हाँ मृत्युको भी जिसने जीता है, मृत्युकी भी जिसने मृत्यु कर डाली है ऐसा कोई है तो वह परमात्मा है। जिसकी अब कभी भी मृत्यु न होगी। जब जन्म ही नहीं है तो मरण कहाँसे होगा? जितने जन्म वाले जीव हैं चाहे वे बड़े इन्द्र हों, चक्री हों, इस कालका फंदा ऐसा है कि जिस किसी पर जब चाहे पड़ जाय। इसका निवारण कोई नहीं कर सकता।

कलियुगका प्रभाव—मनुष्यको चाहिए तो यह कि ऐसी सद्बुद्धि लाये जिसमें दया हो, न्याय हो, क्षमा हो, उदारता हो, इन ही बातोंसे इसका उद्धार है और कुछ समय पहिले या बहुत कुछ पूर्व समयमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलते थे, पर यह एक कलियुगका प्रताप है कि ऐसी विचारधारा के लोग

कदाचित् पाये जाते हैं और बहुतसे देशप्रसिद्ध लोग इन भावोंसे दूर रहा करते हैं, जिनके कारण सभी समाज पर आपत्ति छा जाती है। इसका नाम है कलियुग, कलियुग, करयुग कुछ भी शब्द कह लो। करयुगका तो अर्थ यह है कि अपने हाथों कमाओ तो खाओ, नहीं तो कुछ नहीं है। करयुगका दूसरा अर्थ यह है कि कर पर कर लगाना अर्थात् टैक्स पर टैक्स लगाना, उसका यह युग है। कलियुगका अर्थ यह है कलि मायने पाप उसका युग अर्थात् कलियुग मायने पापोंका युग। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, छल, विश्वासघात सभीका बोलबाला है। इस समय इसका नाम है कलियुग और कलियुगका अर्थ यह है कि कल मायने मशीन उसका युग। कलियुग मायने मशीनोंका युग। बड़े-बड़े मशीनोंके आविष्कार जिस समय हो उसे कहते हैं कलियुग। ये सबकी सब बातें आजके युगमें घट रही हैं।

कुबुद्धि भैया! कहाँ तो वातावरण ऐसा चाहिए था कि मनुष्योंकी प्रायः प्रवृत्ति धर्ममें होती, दयामें, दानमें, शीलमें, भक्तिमें, संयम, तपस्यामें इनमें वृत्ति होती और इस दुर्लभ नरजीवनको इस संयमसे साध कर इसका अपूर्व फल पाते परलोक सुधरता, वहाँ भी धर्मका वातावरण मिलता और कभी तो शरीरसे, कर्मबन्धनसे वह छुटकारा पा लेता, किन्तु बजाय इस सद्बुद्धिके दुर्बुद्धियोंका प्रसार होता है। शास्त्रोंमें बताया है कि दूसरेके प्राणहारी शस्त्रोंके, हथियारोंके निर्माण करनेमें बुद्धि चलना यह सब कुश्रुत ज्ञान है। लोगोंका विध्वंस हो, लोगोंमें आकुलता बढ़े, क्षोभ हो, संक्लेश हो ऐसे साधनोंके बनानेमें बुद्धिके चलनेका नाम है कुश्रुतज्ञान। इस अशरण संसारमें कहाँ तो लगना चाहिए था और कहाँ लग गये हैं, यही तो एक जगत्का असार प्रसारा है। जब यह काल अपना जाल लेकर सामने आता है तब उसका निवारण करनेमें बड़े-बड़े नायक भी समर्थ नहीं हैं।

आत्महितका विवेक इस अनित्य भवमें अचानक ही जब कभी मृत्यु आ सके ऐसे इस जीवनको परवस्तुओंका मोह हटाकर अपने आपके सहजस्वरूपकी दृष्टिमें उपयोग जाय ऐसा यत्न करने वाला ही बुद्धिमान् है, अन्यथा जो जन्मा है वह तो मरता ही है। जो जन्मे थे वे मरे हैं, जो अब हैं वे अवश्य मरेंगे। न जीवन रहेगा, न देह रहेगा, न वैभव रहेगा, न गांव, नगर इस गतिके विकल्प ये कुछ न रहेंगे। फिर एक नई बात सामने आयेगी। जो अनेक बार पुरानी होकर भी नई-नईके रूपमें आती रहती है, आयेगी फिर वहाँके चक्रमें वैसा दुःख भोगना होगा। कहां लगाव रखना, कौन सारभूत है, कौन शरण है, किससे प्रीति निभानेका निर्णय करना, हठ करना, ये सब अज्ञानभरी कल्पनाएँ हैं। इस अशरण विभावोंका सम्बन्ध त्यागकर अब हे मुमुक्षु! अपने आपके शरणभूत इस अंतस्तत्त्वकी ओर आवो।

जगत्त्रयजयी वीर एक एवान्तकः क्षणे।

इच्छामात्रेण यस्यैते पतन्ति त्रिदशेश्वराः ॥१००॥

अन्तककी उद्धता तीनों लोकोंका जीतने वाला यह काल एक अद्वितीय सुभट है जिसकी इच्छा मात्रसे ही ये बड़े-बड़े त्रिदशेश्वर अर्थात् देवेन्द्र भी गिर जाते हैं, मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। देवों का

नाम त्रिदश है। त्रिदशका अर्थ है तिस्रः दशाः समानाः यस्य स त्रिदशः। जिसकी तीनों दशाएँ बराबर हों उसे त्रिदश कहते हैं। बचपन, जवानी, बुढ़ापा, वहां सक रंगा चंगा रहता है। अन्तर्मुहूर्तमें ही जवानी बन जाना और अन्त तक भी उनको बुढ़ापा न आना। बुढ़ापेकी शकलकी भी कल्पना करो तो अधिक से अधिक इतनी कल्पना कर सकते हो कि किन्हीं देवोंके ६ महीने आयु शेष रहने पर शरीर पर वक्षस्थल पर फूलमाला जैसा उनका आकार हो तो वह मुरक्षा जाता है। अधिकसे अधिक इतनी बात सम्भव है, वह भी घबड़ाये हुए अज्ञानी देवकी बात है। शरीर तब भी उनका पूर्ण यौवन सम्पन्न रहता है। जिसकी तीनों दशाएँ बराबर पुष्ट हैं, समान हैं ऐसे देव भी तो मृत्युके समय गिर जाते हैं, उनका भी वश नहीं चलता है।

त्रिदशोंकी अन्यदशा—देवोंमें से अनेक देव उन ६ माहके प्रकरण में इतना संक्लेश करते हैं जब उन्हें यह दिख रहा है कि अब मेरा मरण होगा, स्वर्ग जैसा ठाटबाट छूट जायेगा, रंगा चंगा दिव्य देह यह मिट जायेगा ओर मरकर नीचे जायेगा। मनुष्य बने या तिर्यञ्च बने, लेकिन जो भी घबड़ाहट रख रहा हो ऐसा देव तो तिर्यञ्च होगा ऐसा अनुमान है और सम्भव है तिर्यञ्चोंमें भी एकन्द्रिय जीव बन जाय। उनके दुःखका कोई अंदाजा लगा सकता है क्या? यहाँ मरने वाले मनुष्यसे कितना गुना दुःख उस मरने वाले देवके होता होगा। कहाँ वह जाय जो कि मृत्यु से बच जाय?

मरणकी दुर्निवारता—एक किंवदन्ती है कि भगवानकी सवारी का राजहंस कभी-कभी उड़कर एक तालाबसे निकला करता था। उस तालाबमें एक कछुवा था। उसका वह मित्र था। तो कभी-कभी वहाँसे यमराज निकलता था। (यह सब किंवदन्ती और अलंकारके रूपमें सुनना) तो कभी किसीको मारने जाता था, कभी किसीको। रास्ता वही था। एक दिन यमराज बोला कि अब दो दिनके बाद इस कछुवेका भी मारनेका नम्बर आयेगा। यह कहकर यमराज चला गया। तो कछुवा राजहंससे बोला अरे मित्र! तुम तो भगवान् के दरबारके खास सेवक हो, परसों हमारी मृत्यु होगी। यमराज न छोड़ेगा, वह देख गया है और कह गया है। राजहंस बोला मित्र तुम कुछ फिकर मत करो। तुम्हारी मृत्यु नहीं हो सकती। ऐसा उपाय हम रचेंगे। तो उसने उपाय क्या रचा? उस कछुवेको चोंचमें दबाकर ले गया एक जंगलमें और एक गुफामें उसको रख दिया और गुफाके दरवाजे पर पत्थर जोड़ दिया। देखें कैसे मारता है, इस जगह ही न रहने देंगे इस कछुवेको। हुआ क्या परसोंके दिन कि उस जगह एक रीछ आया और उस रीछने अपने मुखसे थूथरसे उन पत्थरों को हटाया और भीतर घुसा तो बड़ा पुष्ट कछुवा दीखा, उसे वहीं चबा डाला। अब वहाँ दरबारमें सभी लोग बैठे थे तो वह हंस अपनी चतुराईकी डींग हांक रहा था। यह यम जिस किसीको यों ही मार डालता है और हमने देखो अपने मित्र कछुवे को यों बचाया, यमकी आंखोंमें भी धूल झोंक दिया। तो एक यम बोला तुम जावो और अपने मित्र कछुवे को देख तो आवो कि कैसा है? वह राजहंस उसे देखने गया तो देखा कि वहाँ हड्डियां पड़ी हुई थीं। इस कथनीसे हम इतना सार लें कि मृत्यु से बचनेके लिए चाहे किसी जगह

चले जायें, कहीं छिप जायें, तालाबमें, पर्वतमें, मंदिरमें, किन्तु जब समय आता है तो उसको कोई बचा नहीं सकता। और दूसरी बात यह देखिये मित्र ही मित्रतावश उसकी मृत्युका कारण बन जाता है।

निरापद स्थानका अभाव—अहो कहाँ जायें कि तेरी रक्षा हो जाय? और किसीकी क्यों सोचें अपने आप ही हम आप लोग ऐसी रक्षा वाली जगहमें बैठे हैं, कैसे? ऊपर तो देवोंकी छत्रछाया है हम मनुष्यों पर याने ऊपर रहते हैं देव, उनके नीचे हम आप हैं तो उनकी छत्रछाया हम आपपर है, और इस जगत्में बड़े दुष्ट जीव होते हैं नारकी, सो उनको भी जमीनके नीचे ढकेल दिया कि उन दुष्टोंसे अपना कुछ बिगाड़ न हो जाय। और देखो अनगिनते खाइयां और अनगिनते कोट हम आपको घेरे हुए पड़े हैं असंख्याते द्वीप और समुद्र ऐसे महान् अभेद्य समुद्र और कोटोंसे घिरे हुए रक्षित स्थानमें हम आप बैठे हुए हैं, फिर भी हम आप बच कहाँ पाते हैं? जगतमें कौनसा स्थान ऐसा है, कौनसा पद ऐसा है, कौनसा जीव ऐसा है जहां हम आपको ऐसी शरण मिले कि मृत्युसे भी हम आप छूट सकें? कहीं कुछ न मिलेगा। अपनी शरण अपने सहज स्वभावका दर्शन ही है। उससे ही नाता जोड़ो, प्रीति करो, झुको, उसे ही अपना सर्वस्व जानकर इतना ही मात्र मैं हूँ, ऐसा निर्णय रखो तो अपना शरण अपने में मिलेगा और इन समस्त बाह्य विपत्तियोंसे भी छुटकारा रहेगा।

शोच्यन्ते स्वजनं मूर्खाः स्वकर्मफलभोगिनम्।

नात्मानं बुद्धिविध्वंसा यमदंष्ट्रान्तरस्थितम् ॥१०१॥

मूर्खोंका विचित्र शोक—अपने-अपने कर्मोंके अनुसार कर्मफल भोगनेवाले इन कुटुम्बीजनोंका तो मूर्ख लोग शोक करते हैं। ये कुटुम्बीजन कोई गुजर जायें, किसीको कठिन बीमारी हो जाय तो ऐसी स्थितियोंमें ये मोही लोग अपने कुटुम्बका शोक करते हैं, परन्तु यमके दाढ़ोंके बीच बैठे हुए हैं उसकी इन्हें रंच भी चिन्ता नहीं है। खुद मरणके सम्मुख हैं इसकी ओर तो ध्यान नहीं, किन्तु बाहरमें इष्टके संयोग-वियोग होने से जो कुछ स्थिति आ पड़ती है उसका ये लोग शोक करते हैं, यह बहुत बड़ी मूर्खता है। एक कवि ने लिखा है करिष्यामी करिष्यामी करिष्यामीति चिन्तिं। मरिष्यामि मरिष्यामि मरिष्यामीति विस्मृतं ॥ मैं करूँगा, मैं करूँगा, मैं करूँगा इसको तो बहुत ध्यान रक्खा, पर मैं मरूँगा, मैं मरूँगा, मैं मरूँगा यह बात बिल्कुल भूल गए। संसारके दृश्यमान् सभी मनुष्योंको देख लो, सभीको क्या खुदको भी देखलो। अपने आपके सम्बन्धमें यह मैं भी अचानक किसी समय मर जाऊँगा ऐसा स्पष्ट निर्णय नहीं है। कहते हैं, सुनते हैं पर जैसे औरोंके सम्बन्धमें यह निर्णय बना हुआ है कि ये लोग तो किसी न किसी दिन मरेंगे ऐसा अपने बारेमें इन मोही जीवोंका स्पष्ट निर्णय नहीं है। कुछ-कुछ ख्याल तो होता है और उस मरनेका ख्याल भी बहुत करता है, किन्तु वहाँ स्पष्ट निर्णय अपनी मृत्युके सम्बन्धमें नहीं है।

धर्मपालनके पात्रकी चिन्तकता—भैया! धर्मपालन तभी हो सकता है जब अपने आपको ऐसा माना हो कि मृत्यु तो मेरे सिरपर आ ही चुकी है हिलाने भरकी देर है, जिस किसी भी क्षण हिला

दे उसी क्षण मरना पड़ेगा, ऐसी सिर पर आ पड़ी हुई मृत्युका जिसे ख्याल हो वही धर्मपालन कर सकेगा; जैसे कहावतमें कहते हैं आज करे सो काल कर, कल करना सो परसों। जल्दी-जल्दी क्या पड़ी है अभी तो जीना बरसों ॥ जिसे अपनी मृत्युका ख्याल नहीं, सम्भावना नहीं उसका धर्मपालनमें चित्त नहीं लग सकता। मनुष्यभवमें अनेक प्रसंग बड़े अनिष्ट हैं, जैसे कुटुम्बीजनोंका बिछुड़ जाना, शरीरमें अनेक प्रकारके रोग आ जाना, लक्ष्मी का वैभवका नष्ट हो जाना, इज्जतमें जब चाहे कुछ फक्र आ जाना, यों बहुत सी अनिष्ट बातें इस मनुष्यभवमें हैं। देवभवमें इतनी अनिष्टता नहीं है चिरकाल तक देवोंकी जितनी आयु है, उससे पहिले उनका मरण नहीं होता। खाने-पीनेकी चिन्ता नहीं, सामर्थ्य नहीं ऋद्धियाँ अनेक हैं। जहाँ क्लेश नहीं है, देवोंमें शरीरमें रोग नहीं होता, भूख प्यासकी बाधा नहीं इष्टवियोगका भी खासा दुःख नहीं है। देवांगना मर गयी तो एवज में कुछ ही समय बाद फिर दूसरी आ गयीं कोई देव गुजर गया तो देवांगनाको कुछ ही समय बाद दूसरा देव मिल गया। तो जहाँ इतनी मौज है वहाँ कल्याणका अवसर भी नहीं है।

आत्मीय विशुद्ध आनन्दका स्रोत—एक जगह आचार्यदेवने कहा है कि हमारे क्लेशोंका होना, शरीरका गन्दा रूग्ण मिलना, इष्टवियोग होना, ये सारी वेदनाएँ हमें आत्महितमें प्रेरणा कराती हैं। कहते हैं ना लोग कि दुःखमें सब सुमिरन करें, सुखमें करे न कोय। जो सुखमें सुमरन करे तो दुःख काहेको होय ॥ प्रभुस्मरणके समयका जो आनन्द है वह आनन्द बहुत-बहुत विषयोंके भोगनेमें नहीं है। उसकी जाति ही न्यारी है। जब जगत्से न्यारे निर्लेप शुद्ध निर्दोष प्रभुके स्वरूपका ध्यान होता है और उस स्वरूपके स्मरणके साथ अपने आपके स्वभावका भी स्पर्श होता है उस समय जो सहज निराकुलता जैसी स्थिति और उसका आनन्द प्राप्त होता है, दोनों आनन्दोंमें आप तुलना कर लीजिए। सांसारिक सुख याने विषयसुख एक तो क्षोभसे भरा हुआ है; अर्थात् इन्द्रियसुखमें तो प्रारम्भमें क्षोभ, भोगते समय क्षोभ, बिछुड़ते समय, मिले तो क्षोभ और विषयोंकी आशा हो, मिले नहीं तो क्षोभ, किन्तु आत्माके सहज अंतस्तत्त्व के स्मरणमें अनुभवमें जो आनन्द होता है वह क्षोभरहित समताको फैलाता हुआ विशुद्ध आनन्द प्रकट होता है। उस आनन्दकी जिन्हें सुध नहीं है अतएव जो बुद्धिहीन हो गए हैं वे बाहरी बातोंके संयोग वियोगका तो लेखा जोखा लगाते रहते हैं, किन्तु अपने आपके सम्बन्धमें इतना भी ध्यान नहीं है कि हम तो यमके दांतोंके बीच फँसे हुए हैं, न जाने कब दबोच दे। अशरण भावनामें अनेक पद्धतियोंसे यह बात दिखा रहे हैं कि इस जीवकेलिए बाहरमें कुछ भी दूसरा पदार्थ शरण नहीं है।

अस्मिन् संसारकान्तारे यमभोगीन्द्रसेविते ।

पुराणपुरुषाः पूर्वमनन्ताः प्रलयं गताः ॥१०२॥

इष्टवियोगके क्लेशकी व्यर्थता—कालरूपी सर्पोंसे भरे हुए इस संसाररूपी बनमें पहिले भी अनेक अनन्तपुरुष, पुराणपुरुष प्रलयको प्राप्त हो गए, तब निकट भूतकालमें जो कुटुम्बमें अनेक लोग

मृत्युको प्राप्त हो गए उनकी शंका करना वृथा है। कोई इष्टवियोग हो जाय तो शोक तो होता है पर करीब-करीब जैसे-जैसे दिन व्यतीत होते हैं वैसे ही वैसे शोकमें अन्तर भी दिखता है। कोई ही विचित्र व्यामोही ऐसा होगा जो बीसों वर्ष गुजर गए इष्टके वियोगमें फिर भी आज भी जैसे पहिले शोक किया था वैसे ही बन रहा है। करीब-करीब ऐसा होता है कि जैसे दिन गुजरते जाते हैं, शोक भी कम होता जाता है और ज्ञानी जीवों की तो उस काल भी शोकमग्नता नहीं हुआ करती है।

निर्मोहपर इष्टवियोगकी प्रतिक्रियाका अभाव—किसी सभामें रोज-रोज एक सेठ जी आया करते थे शास्त्र सुनने। एक दिन आध घंटा लेट आये तो वक्ताने पूछा कि सेठजी आप आपको आध घंटा देर कैसे हो गयी? सेठ धर्मात्मा था, ज्ञानी था, सम्यग्दृष्टि था, उसने कहा महाराज! आज एक महिमान गया है जो उसकी बिदाईमें आध घंटा देर हो गयी है। सभी लोग सुनकर हैरान हुए यह तो कभी किसी महिमानके आने जानेमें शास्त्रसभामें देर करके नहीं आते थे, आज कैसे एक महिमानके विदा करनेमें देर करके आये? लोगोंने कहा सेठ जी से कि उस महिमानकी विदाई का टाइम बदल देते। तो सेठ बोला कि अन्य महिमानोंकी विदाईका टाइम बदला जा सकता है, पर उस महिमान की विदाईका समय नहीं बदला जा सकता था। आखिर सब लोगोंको पता पड़ गया कि इसका इकलौता बेटा था वह गुजर गया है। तो देखो ऐसी बात थी पर उसके मुखपर विषादकी रेखा न थी। ऐसी बात में मोहीजन तो विषाद मानेंगे और यही विश्वास करेंगे कि ऐसा हो नहीं सकता कि पुत्रके गुजर जाने पर विषाद पैदा न करे। पर यह सब संभव है। जिसे केवल अपना ही स्वरूप, अपना ही शरण नजर आ रहा है और इस पर ही मेरा अधिकार है, यह मैं मुझसे कभी अलग नहीं हो सकता, प्रत्येक स्थितिमें यह मैं ही अनेक परिस्थितियोंको भोगा करता हूँ। ऐसा जिसे अपने एकत्वस्वरूपका भान हुआ है, उस पुरुषको ये संयोग वियोग ये न कुछ बातें मालूम होती हैं।

ज्ञाताद्रष्टा रहनेमें बुद्धिमानी—हे आत्मन्! इस संसारबनमें अनेक पुराण पुरुष बड़े-बड़े, जिनका बड़ा ऐश्वर्य था वे भी बिछुड़ गए, गुजर गए तो उस ही पद्धतिके अनुसार यहाँ भी कोई इष्ट गुजर गया, उसका शोक करना व्यर्थ है। 'या घर या ही रीति है, इक आवत, एक जात। सब अपना-अपना हिसाब लगा लो। ये नये आये, पुराने चले गए। जिस बात का अपना वश नहीं है, हो रहा है, परका परिणमन है उसके ज्ञाताद्रष्टा रह सकें, ऐसा ज्ञान बायें, साहस बनायें, यह तो बुद्धिमानीका काम, पर किसी प्रसंगमें रो देना, यह तो कोई बुद्धिमानी नहीं है।

प्रतीकारशतेनापि त्रिदशैर्न निवार्यते।

यत्रायमन्तकः पापी नृकीटैस्तत्रका कथा ॥१०३॥

आनन्दकी अनिवार्यता—इस मरणका निवारण तो देव भी नहीं कर सकते। चाहे वे सैकड़ों उपाय कर लें फिर इस मनुष्य कीटकी तो कहानी ही क्या है? मनुष्य अपनी रक्षाकेलिए बहुत सुदृढ़ मकान बनाते हैं, मजबूत दीवाल, कोट, खाईके बीचमें बहुत अच्छा भवन जिसमें सर्दी गर्मी ऋतुके

अनुकूल सारी सुख सामग्री रखते हैं, ताकि किसी भी प्रकार यह देह मिटे नहीं। डॉक्टर भी लगा रक्खा है, बड़े उपचार भी किये जा रहे हैं, बहुत-बहुत प्रयत्न करने पर भी किसीको पता नहीं कि किस समय यह मनुष्यकीट संसारसे विदा हो जाता है? एकका मित्र बीमार था, वह अपने बीमार मित्रसे मिलनेके लिये शामके समय गया। बीमार मित्रसे पूछा कहां भाई अब कैसी तबियत है? बोला क्या बतायें, बिस्तर से उठा ही नहीं जाता, करवट भी नहीं बदल पाता, बहुत कठिन बीमारी है, हिला-डुला भी नहीं जाता। कुछ बातें होनेके बाद वह मित्र अपने घर चला गया। सुबह ६ बजे फिर अपने मित्रकी खबर लेने आया, घरके लोगोंसे पूछा कि अब हमारे मित्रकी कैसी हालत है? तो घरके लोगोंने बताया कि वह तो चला गया। कहां चला गया? वह तो दुनियासे चला गया। तो वह झुंझलाकर कहता है कि कल तक तो यों कहता था कि बिस्तर से उठा जाता नहीं, आज उसमें दुनियासे भी जानेकी ताकत आगयी। वह बड़ा धोखेबाज निकला। तो यहाँ किसकी शरण गहते हो, यहाँ कौन शरण हो सकता है, सभी तो अशरण हैं। जो स्वयं अशरण हों उनसे शरण मिलनेकी आशा क्या? जो स्वयं शरणभूत हो गए हैं वे हैं परमात्मप्रभु। वे भी परद्रव्य हैं, वे हमारा हाथ पकड़कर तार न देंगे। जो शरण हुए हैं, समर्थ हुए हैं उन जैसा स्वभाव मुझमें है। मैं खुद, खुद की ही शरण गहूं तो मेरे लिए मैं ही शरण हूँ।

अज्ञानमें ही सर्वत्र क्लेश भैया? घर पकड़ कर रहते हैं तो वहाँ भी कष्ट है। घर पकड़में नहीं रहता। कुटुम्ब पकड़कर चलत हैं तो वहाँ भी कष्ट है। कुटुम्ब रहता नहीं सदा। इस शरीर की पकड़ करते हैं तो इसमें भी कष्ट है। यह शरीर भी रहता नहीं है और एक अपने आपके स्वरूपकी पकड़ करें तो यह तो कहीं जाता नहीं। हम इसका ग्रहण न करें तब भी मेरे ही पास है और जो शाश्वत है उसको ग्रहण करें तो इस स्वरूपकी ओरसे धोखा इसका नहीं है। हम ही छोड़ दें यह बात अलग है जैसे हम परपदार्थोंका ग्रहण करते हैं तो वहाँ परकी तरफसे धोखा रहता है। कभी भी उसका वियोग हो सकता है। हम अपने स्वरूपका ग्रहण करें तो स्वरूपकी ओर तो धोखा है ही नहीं। हम ही ग्रहण न करें यह हमारी बात है। तो ऐसे निजस्वरूपका जिसके ग्रहण है उसके लिए मृत्यु नहीं है। उसके ध्यानमें ही नहीं कि मैं मरा। मैं तो यहाँ हूँ, यहाँ न रहा, दूसरी जगह चल दिया।

ज्ञानमें सर्वत्र आनन्ददृष्टि जिस नगरमें, देशमें किसीसे अपना परिचय न हो और वहाँ कोई यह कह दे, स्टेशन पर हो या किसी जगह हो, भाई साहब! आप यहाँ न बैठिये, वहाँ चले जाइये। तो उसको उस स्थानको छोड़कर चले जानेमें कष्ट नहीं होता, विकल्प नहीं होता, विवाद नहीं होता, और जिस देशमें, नगरमें परिचय हो गया हो और वहाँ कोई कह दे साहब आप यहाँ न बैठिये, वहाँ बैठ जाइये, तो वह बुरा मान लेता है। जिस जगह कोई अपना परिचय वाला न हो वहाँ गालियाँ भी सहन हो जाती हैं और जिस जगह परिचय हो वहाँ एक साधारण बात भी सहन करना कठिन है। मेरे जानने वाले लोग मुझे क्या समझ रहे होंगे कि यह न कुछ चीज है। यों विकल्प बढ़ गये। तो

अब समझिये कि इस ज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुषने इन मायामय चीजोंसे कोई परिचय नहीं करा रखा है, सबको अपरिचित जान रहा है। ये दृश्यमान् शरीर, ये मायामयी मूर्तियाँ हमें जानती ही नहीं।

अज्ञानका कारण बाह्य परिचयकी कल्पना—कहीं बहुतसे काठ पत्थर ढेलोंके बीचमें से कोई जा रहा हो और कोई ढला लग जाय तो उस समय वह अपना अपमान तो नहीं महसूस करता, क्योंकि वह जानता है कि ये ढेले पत्थर तो अचेतन हैं। लग गये मुझपर तो लग गये, अपना अपमान महसूस नहीं करता कि यह ढेला मुझ पर गिर क्यों पड़ा? इसने मेरा बड़ा अपमान किया। कहीं परिचय हो और वहाँ कोई पत्थर गेर दे सिर पर तो अपना अपमान महसूस करता है। पत्थरके सम्बन्धमें वह खूब जानता है कि इस पत्थरसे मेरा कुछ परिचय नहीं है, ये पत्थर भी कुछ अपमान महसूस नहीं करते, पर वह अपरिचित लोगोंके बीच अपना अपमान महसूस करता है। ज्ञानी पुरुष इन दृश्यमान् सभी परपदार्थोंके प्रति यह समझ रहा है कि ये मुझे जानते ही नहीं, इनमें जाननेका स्वभाव ही नहीं पड़ा हुआ है। ये दृश्यमान् सभी मुझे जानते ही नहीं हैं और जो जानने वाला खास है वह अत्यन्त गुप्त है, वह व्यवहार में आता नहीं, मुकाबलेमें खड़ा होता नहीं, वह तो निर्विकल्प है। यों इस जगत्के अपरिचित समझने वाला सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष क्षोभको प्राप्त नहीं होता है, लोगों के किसी प्रकारके व्यवहारके कारण।

मरण समयमें ज्ञानी पुरुषके खेदके अभावका कारण—ज्ञानी पुरुष आयुका क्षय हो जाय तो वह कहाँ क्लेश मानता है? जैसे अपरिचित स्थानमें किसीने कह दिया, बाबूजी आप यहाँ न बैठिये, वहाँ बैठ जाइये तो वह उठकर चला जाता है, उसका खेद नहीं मानता ऐसे ही अब नवीन आयुकर्मका उदय आनेको है तो उसने पहिलेसे ही कह दिया कि अब महाराज यहाँसे जाइये और उस जगह चले जाइये, जो दूसरे भवमें जन्म स्थान है। तो यह तैयार रहता है, अच्छी बात है तो अब वहाँ चलो और जिस जीवने यहाँके समागममें, वैभवमें परिजनमें परिचय बनाया है और उनके इस व्यवहारके कारण अपने यश और नामकी कल्पना की है उसे अब यहाँसे उठकर अन्यत्र जानेमें क्लेश होता है क्योंकि इसकी दृष्टि इस परिचित समागममें लगी है कि ये सब छूटे जा रहा है। बड़ा परिश्रम करके तो हमने इतना कमाया, इतना वैभव इकट्ठा किया, ऐसी पोजीशन बनायी, इतने आरामके साधन इकट्ठे किये, लेकिन अब यों जाना पड़ रहा है।

दुःख दूर होनेका यत्न—भैया! दुःखसे दूर होनेके लिये यह उपाय नहीं करना है कि बहुतसे परिग्रहोंका संचय करलो, यश बढ़ा लो, नायक बनलो। यह तो होता है इस पुण्यादयके अनुसार। यह भी कर्मफल है। पर करनेका प्रयत्न तो अपनेको अपना परिचय बनाया और इन दृश्यमान् जालोंसे अपरिचित बनाना, यह अन्ततः एक ज्ञानमय कार्य करने को पड़ा हुआ है। यह बात समाई तो मृत्युका भी दुःख नहीं है और अपने स्वरूप की बात न समाई तो इन्द्र भी हो, चक्री भी हो ये सबके सब इस यमके पञ्जेके वशीभूत होकर दुःखी हुआ करते हैं यह मरण बड़े-बड़े देवोंके द्वारा भी निवारण नहीं

किया जा सकता जब फिर यह नरकीट जो देवोंके समक्ष ऋद्धि बल आदिमें कीटकी तरह है इसकी तो कहानी ही क्या है? तात्पर्य यह है कि काल दुर्निवार है। तब कभी भी अपना अचानक मरण सम्भव है। जब तक मरण न आये तब तक आत्मकल्याण कर लो और जब एक दम समय आ ही पड़ेगा तो करते भी कुछ न बनेगा और संक्लेश मरण होनेसे अगले भवमें भी पीड़ा होगी, ऐसा एक निर्णय बना लें। इससे जगत्को असार जानकर अपने स्वरूपकी शरण गहें और अपने आपके बर्तावसे अपने आपमें प्रसन्न रहनेका यत्न करें।

**गर्भादारभ्य नीयन्ते प्रतिक्षणमखण्डितैः
प्रयाणैः प्राणिनो मूढ कर्मणा यममन्दिरम् ॥१०४॥**

संसारी जीवोंका जन्मके अनन्तर ही यममन्दिरकी ओर प्रयाण है पर्यायबुद्धि प्राणी! देख यह आयु नामका कर्म गर्भसे लेकर ही निरन्तर प्रतिक्षण अपने प्रयाणें द्वारा यमकी मूर्तिकी तरह इस प्राणीको लिये जा रहा है, इसका तो विचार कर। यह जीव जबसे गर्भमें आता है अर्थात् जन्म स्थान पर पहुँचता है तबसे ही यह निरन्तर प्रति समय मृत्युकी ओर जा रहा है। मरण दो प्रकार के होते हैं एक आवीचि मरण और एक तद्भव मरण। जबसे यह जीव नवीन भवमें आया है तबसे लो दो मिनट निकल गए तो इसका अर्थ कि दो मिनटका मरण हो गया। प्रति समय यह जीव मरता जा रहा है। आयुके क्षय होनेका नाम मरण है। आयुका प्रति समय उदय चलता है। तो जितने निषेकोंका उदय आ रहा है उतने निषेक तो नष्ट ही हुए अर्थात् प्रति समय जो आयुका समय निकल रहा है, यह है आवीचिमरण और जब इस भवसंबन्धी आयुके समस्त विपाक निकल जायें तो उसे कहते हैं तद्भवमरण तद्भवमरण तो लोग जानते हैं कि यह जीव अब मर गया, पर आवीचिमरणकी तरफ बिरले ही ज्ञानी पुरुषोंका ध्यान रहता है। तो प्रति समय मरण हो रहा है। जिस नवीन भवकी आयु मिली उस ही का नाम पूर्वभवका मरण है।

प्रतिक्षण मरण और हमारा कर्त्तव्य—जन्म और मरण इन दोनों का एक ही समय है। इसही प्रकार इस जीवनमें प्रतिक्षण जो जीवन चल रहा है वह प्रतिक्षणका जीवन ही मरण है। जब जैसे यह उपदेश दिया जाय कि मरणके समयमें समतापरिणाम करो, समाधिमरण करो, विषय कषाय मूर्च्छाका परिहार करो तो उसका भी तो यही अर्थ लो कि हम प्रति समय समतापरिणाम रखनेका यत्न करें, क्योंकि हमारा मरण प्रति समय हो रहा है तब हम समाधि मरण भी प्रति समय बनाये रहें; अर्थात् समतापूर्वक अपना जीवन बितायें। इस ही कल्याणकी बातका ध्यान दिलाने के लिए इन शब्दोंमें कहा जा रहा है कि देख हे मूढ़! जबसे तू गर्भमें आया है तबसे तू निरन्तर यमराजके महलकी ओर जा रहा है, अर्थात् मृत्युके निकट पहुँच रहा है। पर सोचते तो यह हैं कि हम बड़े हैं, हमारी उमर इनसे बड़ी है, पर इसका ख्याल नहीं रखते कि इस प्रकार का काल्पनिक बड़ा-बड़ा बनाकर यह काल, यह व्यतीत हुई आयु हमें एक दिन बहुत ही निकट कालमें इस भवसे विदा कर देगी, हमारा मरण हो

जायेगा, यह काल हमें खा लेगा इसका ध्यान नहीं है और बड़ा-बड़ा मानकर मोहमें भूला फिरता है। अब हम इतने बड़े हो गये। यह जीव गर्भसे लेकर प्रतिक्षण यम अर्थात् मृत्यु क्षयकी ओर ही जा रहा है, फिर तू यहाँ किसकी शरण ढूँढता है?

यदि दृष्टः श्रुतो वास्ति यम ज्ञावञ्चको बली।

तमाराध्य भज स्वास्थ्यं नैव चेत्किं वृथ श्रमः ॥१०५॥

दुर्निवार यमाज्ञा—यदि तू ने इस यम से भी बलवान् कोई पुरुष देखा हो जो यमकी आज्ञाको भी भंग करदे ऐसा देखा हो अथवा सुना हो तो हे प्राणी! तू जा, उसकी ही शरणमें रह, उसकी ही आराधना कर, क्योंकि अब यमराजसे भी कोई बली पुरुष तुम्हें मिल गया है। लेकिन मिलता भी है कोई क्या? संसारमें कोई जीव ऐसा है क्या कि जो मृत्यु से बाहर हो? नहीं है। हो कोई यदि इस लोकमें ऐसा जीव तो उसकी सेवा करो। है कोई क्या ऐसा? हां है। जिसका अब कभी जन्म न होगा ऐसे जो सिद्ध भगवंत हैं, वे हैं यमसे भी ज्यादा बली। उन्हें कहते हैं कृतान्तान्तक। जिसने कृतान्तका भी अन्त कर दिया है, मृत्युसे भी, जन्म से भी जो परे हैं उनकी सेवा करो।

यमाज्ञाके लोपका यत्न—हे आत्मन्! तू अपने ही स्वरूपमें तो देख, तेरा सत्त्व मृत्युसे बली है। मृत्यु तेरे सत्त्वको समाप्त नहीं कर सकती तब अपने आपमें सहज विराजमान् जो यह चैतन्यस्वरूप है इस चैतन्य-स्वरूपकी उपासना कर। एक अपने आपके शरणको त्यागकर बाहरमें कहीं भी शरण ढूँढा तो ये तेरे परिश्रम व्यर्थ हैं। कोई शरण नहीं मिलने का है। अशरणको शरण मान मानकर अपने आपको धोखेमें बनाये रखना, इससे तो बुरी दुर्गति होगी। बाहरमें तू किसी को भी शरण मत समझ। एक अपने आप को यदि निर्विकल्प बना सकता है, मूर्च्छासे परे रख सकता है तो तेरे लिये तू ही शरण है। तू शरण मिल जायेगा? अन्यथा बाह्यदृष्टिसे तो केवल दौड़ धूप ही है, श्रम ही है, वेदना ही है, क्षोभ-ही-क्षोभ है, खूब परख लो।

आत्महितका तन्त्र—भैया! इतनी ही तो एक तंत्र हैं जहाँ अन्य पदार्थोंकी ओर आकर्षण हुआ तो क्षोभ होने लगेगा। जहाँ अन्य पदार्थोंकी ओर आकर्षण न करके अपने सहजस्वरूपकी निरख अथवा इसही में घुल-मिलकर अपने उपयोगको बनाया तो सारे झंझट समाप्त हो जाते हैं। किसी समय अपने आपकी ऐसी परिस्थिति बने तो सही, मिनट दो मिनटकी भी। यदि सबको तू भूलकर अपने आपके इस ब्रह्मस्वरूपमें निवास करता है, ऋषि संतोंकी आज्ञा मानता है तो कहीं इन दो-चार मिनटोंमें ही घर न उजड़ जायेगा, परिजन भाग न जायेंगे। यदि तुझे इस में शान्ति न मालूम पड़े तो घर तो पडा ही हुआ है। दिन रात उसही में बसा रहे, पर एक बार उस उपायका जैसा कि ऋषि संत बार-बार कह रहे हैं झलक तो लो, यत्न तो करो और कुछ अपने आपमें विश्राम पानीकी परिणति तो बने। बाहरमें कोई भी पुरुष ऐसा बलवान् न मिलेगा जो यमराजकी आज्ञा का भी भंग करने वाला हो।

**परस्येव न जानाति विपत्ति स्वस्य मूढधीः
वने सत्त्वसमाकीर्णे दह्यमाने तरुस्थवत् ॥१०६॥**

मूढको स्वविपदाका अपरिचय—ये मोही प्राणी दूसरोंकी आपत्ति को तो खूब जानते हैं, लिखते हैं, देखते हैं, दूसरा मरे तो उसका बड़ा प्रत्यय रखते हैं, मरा ही करते हैं लोग, पर दूसरोंकी आपत्तिकी तरह अपने आपकी आपत्तिका यह मूढ़ जीव ख्याल नहीं करता है; जैसे कोई मूर्ख जंगलमें गया और एक वृक्षपर चढ़ गया, वृक्ष पर चढ़ा हुआ वह देख रहा है कि जंगलमें चारों ओर आग लगी हुई है और उस आग लगी की स्थितिमें भी दीख रहा है कि देखो यह खरगोश जला जा रहा है, यह सांप, यह हिरण, यह सिंह देखो ये कैसे जले जा रहे हैं? वृक्षपर चढ़ा हुआ वह मूर्ख कौतूहल देख रहा है और यह ख्याल नहीं होता कि अभी कुछ ही देरमें यह पेड़ भी तो जल जायेगा जिस पेड़पर हम खड़े हुये हैं, हम कहाँ जायेंगे? क्या होगा? हम बचेंगे या न बचेंगे? इसका कुछ भी ख्याल नहीं होता।

उपदेशकी सुकरता व पालनकी दुष्करता—यह प्राणी दूसरोंकी आपत्तिको तो देख रहा है कि इन पर यह आपत्ति आया करती है पर खुदकी आपत्ति को नहीं देख रहा है। कुछ अनहोनी हो जाय दूसरोंकी तो उसका यह बड़ा ज्ञाता द्रष्टा बन जाता है। यह हो गया, होता ही है। दुनियाकी रीति है। जो आया है वह जाता है। उसे उपदेश देनेके लिये भी बड़ा पंडित बन जाता है, समझाता है। अरे तुम मूर्खता कर रहे हो तुम मोह कर रहे हो, अज्ञानी बन रहे हो। तुमहें कहीं ऐसा शोक करना चाहिये, यों उपदेश दे डालता है, पर खुद पर उससे चौथाई भी आपदा आ जाय तो वह विह्वल हो जाता है। यह चतुर मनुष्य कथनी करता है खुद जब चैनमें है। दूसरोंके विषयमें बड़े उपदेश झाड़ता है, समझाता है पर स्वयंमें यह साहस बनाया ही नहीं कि ऐसी विपदा मुझपर आये तो उस विपदा को समतासे सहन कर लूँगा, उसमें खेदखिन्न न होऊँगा।

उर उपदेश कुशल बहुतेरे—हिन्दी उपदेशमें कहा करते हैं पर उपदेश कुशल बहुतेरे। दूसरोंके उपदेश देनेमें कुशल बहुतसे लोग हैं। किसीको सर्दी हो जाय, जुखाम हो जाय। कुछ बात हो जाय तो आपको सभी लोग वै ही वैद्य दीखेंगे। कोई कहेगा कि काली मिर्चका काढ़ा पीलो, कोई कहेगा एनासीनकी गोली खा लो, कोई कुछ बतायेगा कोई कुछ, पर ऐसा शायद ही कोई मिलेगा जो उसे न समझाये या उसकी दवा न जानता हो, ऐसे ही दूसरे जीवों पर किसी प्रकारकी विपदा आ जाय तो उस विपदामें धैर्य देनेके लिये भी सभी अपनी कुशलता बताते हैं पर उन वचनोंका स्वयं पर कोई असर डाले दृष्टि दे तो शून्य निकलता है करीब-करीब। सभी नहीं होते ऐसे। ज्ञानी ही, विवेकी ही ऐसे हुआ करते हैं।

उपदिष्ट नियमके पालनकी दुष्करता पर एक दृष्टान्त—दूसरोंको समझाना दूसरोंका कौतूहल देखना यह सब सुगम रहता है और अपने आप पर ज्ञान प्रयोग करना यह कठिन रहता है। इसी प्रयोगके लिये ज्ञानबलकी अधिक जरूरत रहती है। एक कहावत ऐसी प्रसिद्ध है कि एक सभामें एक पंडितजी

उपदेश दे रहे थे। बैंगन न खाना चाहिये, उसकी अनेक मोटी पर्त होती हैं, इससे उसमें कीड़े छिपे रहते हैं, बैंगन नाम इसीसे है कि वे बेगुन हैं अर्थात् उनमें कोई गुण नहीं है, इस प्रकार का उपदेश पंडित जी सभामें दे रहे थे। उनकी स्त्री भी यह उपदेश सुन रही थी। तो उपदेश समाप्त होने के बाद स्तुति पढ़ी जा रही थी तब उन पंडितजी की स्त्री जल्दी से घर गई और जो भटे का साग बनाया था उसे फेंक दिया नालीमें, सोचा कि कहीं पंडित जी नाराज न हों पंडित जी जब घर आये और खानेके लिये चौकेमें बैठे तो देखा कि कोई साग नहीं है। स्त्रीसे पूछा कि कोई साग नहीं बनाया? तो स्त्री बोली कि बैंगनका साग बनाया था। आपका उपदेश सुनकर मैंने उसे नालीमें फेंक दिया, सोचा कहीं आप नाराज न हों। तो पंडित जी बोले अरे वह उपदेश तो सभामें बोलनेके लिये था, वह तो दूसरोंके लिये था, जा नालीसे साग ऊपर ऊपर से बटोर ला। यह प्राणी दूसरोंको तो खूब उपदेश दे लेता है, पर खुदपर नहीं घटित करता तो जैसे जंगलमें पेड़ पर चढ़ा हुआ वह मुसाफिर कौतूहल देख रहा है पर खुदकी कुछ खबर नहीं है, ऐसे ही ये संसारके प्राणी दूसरोंके मरण को तो देख रहे हैं, पर खुदका भी किसी दिन मरण होगा, इसका कुछ विचार नहीं करते। यही तो पर्यायबुद्धि का दोष है।

यथा बालं तथा वृद्धं यथाढयं दुर्विधं तथा।

यथा शूरं तथा भीरुं साम्येन ग्रसतेन्तकः ॥१०७॥

अन्तककी यमवर्तिता—यह मरण, आयुक्षय, यमराज देखो बड़ी समतासे जिसे खा लेता है। जैसे बालकको ग्रसता है वैसे ही वृद्धको ग्रसता है। कोई मृतकोंकी संख्या करे तो करीब-करीब यही बात दीखेगी कि मरने वालोंमें जितनी संख्या वृद्ध लोगोंकी है उतनी ही संख्या जवान और बालकों की भी है। सभीको यह यम समतासे ग्रस लेता है। यह अलंकारमें कह रहे हैं, कहीं यम नामका कुछ रहता नहीं है। आयुके क्षयका नाम यम है। प्रकरणमें यह बता रहे हैं कि यह मरण सब पर अचानक आ जाता है। यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि ये तो बच्चे हैं, ये तो ५० वर्ष जीवेंगे यह दम भरकर कोई नहीं कह सकता कि किसकी अब अचानक मृत्यु आ जाय? जैसे यह यम अचानक ही बालक को ग्रस लेता है वैसे ही वृद्धको ग्रस लेता है। इसके पक्षपात नहीं है कि बूढ़ेको ग्रस ले और बालकको न ग्रसे। यह यमराज जैसे धनिकको ग्रस लेता है ऐसे ही दरिद्रको ग्रस लेता है। वहाँ यह पक्षपात नहीं है कि यह गरीब है इसे ग्रस लो और इस धनिकको न ग्रसे। यममें (मरणमें) किसी प्रकारकी विसमता नहीं है। जैसे ही शूरवीरको ग्रसता है वैसे ही यह कायरको ग्रसता है। यों सभी मरते जा रहे हैं। जब सभी जीव एक इस पञ्चतत्त्वको, मरण को ही प्राप्त होते हैं तब इनमें से हम किसका शरण ढूँढ़ें? इस यमराजका नाम समवर्ती भी है, परतेशट् भी है। मरण मृत्यु यह श्मशानका राजा है। इसका नाम समवर्ती भी है। ये मृत्यु सब प्राणियोंमें समान है।

स्वयं समता धारणकी शिक्षा—यहाँ यह भी शिक्षा लेना कि ऐसे दुष्ट यममें तो समता बनी है और हम लोग जो इतने धर्मके प्रसंगमें हैं, धर्म पालनके लिये यत्न करे हैं उनके समता न जगे,

यह खेदकी बात है। भीतरमें हम आप सबके ऐसी श्रद्धा रहनी चाहिये कि जो उदारताका बीज बने, कुछ भी बिगाड़ गया हो उसको झट क्षमा कर सकें। क्या है? संसार है, प्रवृत्तियाँ हैं और प्रथम तो यह बात है कि दूसरे लोग अपराध नहीं करते हैं। यह खुद कषायोंसे भरा हुआ है सो कल्पनायें बनाता है और अपने अपराधसे अपने आपको दलित करता रहता है।

ज्ञानका आचरण—भैया! ऐसा ज्ञान बसावो जो उदारताका बीज हो। कोई धन वैभव क्षीण हो गया, हो गया, पर चीज है। रहा तो रहा, न रहा तो न सही। दोनों स्थितियोंमें इस विभक्त चैतन्यस्वरूपमात्र आत्माका कौनसा बिगाड़ है? उदारता बन सके ऐसा ज्ञानप्रकाश जगे। मोह, मूर्च्छा, पक्षपात, आसक्तिमें कुछ भी हित नहीं है। अनुदार वृत्तिमें अपना समय ही गमाया जा रहा है, ऐसा निर्णय रखिये और है क्या? क्षमा कर दिया किसीको तो पुण्य ही बना। और इससे भी अधिक वैभव, यश, विश्रामके साधन, शान्तिके समागम और भी कई गुने प्राप्त होंगे। नम्रता वर्तो तो इससे भी अधिक लौकिक सम्मान मिलेगा और पारलौकिक सम्मान मिलेगा, क्यों व्यर्थमें वहाँ वहाँकी बातोंमें उपयोग डालकर अपनेको बरबाद किया जाय? सदा साफ सीधी बात कहे तो इसे अपने दिमागमें कुछ चिन्तन न करना पड़ेगा, स्पष्ट रहेगा। क्यों किसी पदार्थ की तृष्णा बनायें, तृष्णासे लाभ क्या है? केवल क्लेश ही प्राप्त होगा तृष्णा करने से। समता जैसे बने, उदारता जैसे जगे, ऐसा ज्ञान बनानेका अपनेको यत्न करना चाहिये।

**गजाश्वरथसैन्यानि मन्त्रौषधवलानि च।
व्यर्थीभवन्ति सर्वाणि विपक्षे देहिनां यमे ॥१०८॥**

अन्तकालमें उपायोंकी व्यर्थता—जब यह काल इस प्राणीके विरुद्ध हो जाता है उस समय हाथी, घोड़े, रथ, सेना, मंत्र, औषधि ये सब बल व्यर्थ हो जाते हैं। किसी वेद्यसे रोगीको दिखायें तो वैद्य दम भरता है कि मेरी ऐसी अचूक औषधि है कि रोगीका रोग नहीं रह सकता, पर साथ ही यह भी कहना पड़ता है कि यदि इसका अन्तकाल नहीं आया हो तो रोग तो ठहर नहीं सकता। उनका दम भरा तो ठीक है। वैद्यका रोगीसे हाथ लग जाये तो उस रोगीका रोग ठहर ही न सके, यह बात उनकी दृष्टिसे बिल्कुल सच है। या तो वह ठीक हो जायेगा इसलिये रोग न ठहरेगा या मरण हो जायेगा। तो फिर रोग ठहरेगा कहाँ? वैद्य लोग दम भरकर कहते हैं। उनकी बातमें कुछ कसर नहीं है।

खाली हाथ जाना—लोग अपनी रक्षाके लिये हाथी, घोड़ाका वैभव रखते हैं, सेना साज दल बल रखे हैं कोई शत्रु मेरे पर न आ जाय, मेरा बिगाड़ न कर सके तो ये सब सामान रखते हैं किन्तु सुना होगा सिकन्दर एक बहुत बड़ा बलिष्ठ राजा हो गया है। उसने इस भूमि पर बहुत अधिक दूर तक अपना राज्य फैला दिया था, किन्तु जब वह गुजरने लगा, इतने बड़े विस्तृत राज्यका अधिकारी सम्राट सिकन्दर मरते समय यह सोचने लगा कि इस समय मेरा कोई साथी नहीं है। इतनी बड़ी सेना, बड़ा वैभव, राजा लोग जो चरणमें नतमस्तक होते हैं ये कोई भी मेरे साथी नहीं हो रहे हैं। मैं इतना

पराक्रमी एक इस आयुक्षयसे ही हार गया। मरते समय उसके वैराग्यसा हुआ और लोगोंसे यह कह गया 'ऐ मंत्रियों! देखो मरने के बाद जब लाशको तुम पटरी पर धरकर बाजारोंमें से ले जावोगे तब मेरे दोनों हाथोंको बाहर निकालकर ले जाना, ताकि दुनियाके लोग यह जान सकें कि इतना बड़ा वैभववान् यह सिकन्दर आज खाली हाथ जा रहा है।

वैभवसे अलाभ—कुछ भी वैभव हो, इस वर्तमान वैभवसे इस जीवको अज्ञानी पुरुषको कुछ लाभ है क्या? जब तक वैभवका संयोग है तब तक मूर्च्छा ममता विकल्प चिन्ता अनेक छल बल करके अपने आपके इस चैतन्यप्राणका घात कर रहे हैं और जब इस वैभवका वियोग होता है इस वैभवको छोड़कर मर जाता है उस समय तो यह महान् संक्लेश करता है। अहो! बड़े छल बलसे बड़ी कलाकुशलतासे अनेक श्रम करके यह वैभव संचित किया था, आज यह सारा का सारा छूट रहा है। यों सोचकर मरते समय यह जीव बहुत दुःखी होता है और मरणके समयमें जैसा परिणाम होता है उसके अनुसार अगले भवकी जिन्दगी भी चला करती है। दुःखपूर्वक मरे, संक्लेश सहित मरण हो तो अगले भवमें भी इस जीवको ऐसे साधन जुटते हैं कि वहाँ भी संक्लेश करेगा।

मरणसे बचानेका अतिप्रेमीका भी अनधिकार—जब यह काल इस प्राणीके विरुद्ध हो जाता है तब ये सारे ठाट-बाट यों ही पड़े रह जाते हैं, कोई भी वश नहीं चलता। मां आंखें फाड़-फाड़कर देखती रहती है, यह मेरा पुत्र मेरे ही सामने जा रहा है। अरे इसके एवजमें मैं न मर गयी। कितना तीव्र मोहसे व्याकुल होकर उन तड़फती हुई आंखोंसे निहारती रहती है लेकिन वश कुछ नहीं चला। परिजन मित्रजन बड़ा बल लगाते हैं, भाव बनाते हैं और यह कहता है कि सारी सम्पदा भी खर्च हो जाय पर मेरा यह इष्ट बच जाय और खर्च भी कर डाले सब सम्पदा तो भी आयुक्षय किसीसे बचायी जा सकती है क्या? हे आत्मन्! अपनेको ऐसा तो निरखो कि यह जिन्दगी सदा न रहेगी। किसी दिन तो समाप्त होगी ना। तो इस थोड़ीसी जिन्दगीमें अपना शुद्धभाव रखना चाहिये।

कषायोंको दूर करनेका सन्देश—क्रोध कम हो, लोगोंको क्षमा कर दीजिये। यह अभिमान किस पर बगराना है? कौनसी चीज हमारा बड़प्पन बनाने वाली है? सब कुछ असार है, भिन्न है, पर है। नमताका भाव रहे। किससे छल करना, किसके लिये विश्वासघात कपट समाचार करना? अरे इस मायाचारके परिणामसे यह जीव अनेक पापोंके बंध करता है और करीब-करीब मायाचारी पुरुष पर इस भवमें भी बुद्धि दोष की आपत्ति आती है, चित्त ठिकाने नहीं रहता, दिमाग बिगड़ जाता है। यहाँ किस बात पर लोभ करना, धन संचय करके रखना? कोई चीज अपने रखाये रहती भी है क्या? कितना भी उदारचित्त होकर परोपकार में लगा दिया जाय वैभव, फिर भी जितना पुण्य है उससे भी और बढ़ता है और उसके अनुसार पता नहीं है कि किस प्रकारसे वैभव और आ जायेगा। न आये तो परोपकारमें व्यय करके यह सन्तोष तो किया जा सकता है ना जो कि बात भी सत्य है कि यह धन परोपकारमें लगता तो न जाने किन अन्य उपायोंसे नष्ट हो जाता? रखायेसे वैभव रहता नहीं है।

धर्ममें अग्रसर होनेकी प्रेरणा भैया! कषायोंको मंद करके अपने आपको आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्म-आचरणमें लगाना चाहिये। मोक्षमार्गका आदर करो, वैभवका आदर मत करो। यह वैभव रहकर भी दुःखी करेगा और जाकरभी दुःखी करेगा। वैभवका संयोग भी कष्ट देगा और वियोग भी कष्ट देगा। यह तो पुण्यानुसार जो कुछ आता है आने दो, उसके समझदार बनो। उसमें गुजारनेकी व्यवस्था बनाओ और अपने आपके जीवनको 'धर्मके लिये ही यह मिला है' ऐसा जानकर धर्ममें अतीव अग्रसर होवो।

विक्रमैकरसस्तावज्जनः सर्वोपि वल्गति।

न शृणोत्यदयं यावत्कतान्तहरिगर्जिमम् ॥१०९॥

मरणकाल न आने तक प्राणियोंकी वल्गना बड़ा बलवान् भी पुरुष हो, जिसके पराक्रमका ही एक प्रधानरूप हो, वीर पुरुष ऐसा मनुष्य भी तब तक ही उद्धत होकर दौड़ता है, कूदता है, स्वच्छन्द होकर जो कुछ चाहे वह दुनिया पर ढाता है कब तक? जब तक की कालरूपी सिंहकी गर्जनको यह नहीं सुनता है अर्थात् जब तक कल्पनामें यह बात नहीं आती कि मेरी मौत आयेगी, तब तक यह पराक्रमी बलवान् पुरुष उद्धत होकर दौड़ता और कूदता है। जैसे सिंहकी गर्जनाका शब्द हिरन सुन ले तो हिरनकी सिट्ठी भूल जाती और मूर्खसा होकर व्याकुल हो जाता है। ऐसे ही ये देहके बलवान, वैभवके समृद्धिशाली अन्य प्रकारसे ऐश्वर्यके अधिकारी ये पुरुष भी तब तक ही गड़बड़ करते हैं जब तक कि कालका शब्द सुननेमें न आये। लो यह मेरी मौत आ गयी, ऐसा चित्तमें आता है तो सारे होशहवास उड़ जाते हैं।

मृत्युका प्राणीपर प्रभाव भैया! अपने आपकी ही बात देख लो जब उपद्रव सिर पर आ जाता है, लड़ाई हो रही है, गोले बम जहाँ चाहे गिर पड़ते हैं, ऐसी स्थिति आसपास सुननेको मिल जाय तो ऐसी स्थिति में इसके होशहवास कैसे ढीले ढाले पड़ जाते हैं और जब सुखके दिन हैं, उपद्रव कुछ नहीं है और एक परिग्रह संचय या अन्य अन्य धुन में मौज मानी जा रही है उस समय वैभव हो तो वैभवका घमंड, देहमें बल हो तो बलका घमंड, जिसके आगे किसी दूसरेका कुछ भी ख्याल न किया जा सके, ऐसी उद्धता इस जीवमें आ जाती है और जहाँ यह बात गुजरती है कठिन रोग हो जाय तो अथवा भयंकर उपद्रव हो तो किसी प्रकार चित्तमें यह बात आती है कि लो अब तो मौत आने वाली है तो लो यह मौत ही आ गयी, ऐसा ख्याल होते ही यह सब अपने होश खो देता है।

संसारी प्राणियोंके मरणभयकी मुख्यता अशरण भावनाके इस प्रकरणमें मुख्यता यह बताया जा रहा है कि जब इस जीवका तद्भवमरण होता है तो इसका कोई शरण नहीं, यद्यपि हमारी प्रत्येक घटनामें भी कोई शरण नहीं है, चिन्ता करें तो अकेले चिन्ता करके रह जायें। कोई दूसरा भी पुरुष इस चिन्तासे बचाकर हमें हल्का भी कर सकता है क्या? कभी नहीं। हाँ यदि कोई मेरा बड़ा प्रेमी मित्र हो तो प्रेममें आकर वह अपनी एक चिन्ता खुदकी बड़ा लेगा पर दूसरेकी घटाकर वह चिन्ता

न बढ़ा पायेगा। प्रत्येक घटनामें मैं अशरण हूँ, किन्तु इस अशरण भावनामें मरण-मरणकी ही बात शुरूसे अब तक चली आ रही है। इस जीवकी सबसे अधिक भय है मरणका। धन आता हो, कोई कुटुम्बीजन जाते हों ऐसी स्थिति आये तो धनका लुटना पंसद करेंगे और परिवारके बचानेका यत्न करेंगे और कहीं परिजनोंकी जान जाती हो और खुदकी जान बच जाती हो तो प्रायः करके यह अपनी जान बचानेका यत्न करेगा।

मरणभयका एक दृष्टान्त—बंदरियोंको अपने बच्चेसे बहुत बड़ा प्रेम होता है और सुनते हैं ऐसा कि बंदरियाका बच्चा मर भी जाय तो मरे हुए बच्चेको वह छातीसे चिपकाये रहती है, इतना प्रेम होता है, किन्तु देखा होगा, कोई चीज खाने की पड़ी हो तो अपने उस बच्चे के हाथसे हटाकर खुद खाने लगेगी बंदरिया और बड़े भयकी स्थितिके समयकी बात देखो तो कदाचित् पानी बहुत बढ़ जाये, नदीका किनारा हो तो अपने पैरों को ऐड़ाकर ऊंची उठ जायेगी बंदरिया। ज्यादा पानी आजाये तो दो पैरोंके बल खड़ी होकर अपने बच्चे की रक्षा करेगी और ज्यादा पानी आजाये तो यह भी कर सकती है कि बच्चे को नीचे पटक कर बच्चे पर खड़ी होकर अपनी जान बचाये।

ज्ञानका उपयोग ही एकमात्र शरण—जगत्के प्राणी सुख चाहते हैं, पर क्या चाहने चाहनेसे सुख मिल जाता है? जिस योग्य उपादान हो, निमित्त हो, जब जैसी स्थितिमें जो बात होनेकी हो उस प्रकार होती है। यह जगत्का प्राणी मृत्युसे डरता है पर क्या डरने से मृत्यु टल जाती है? वह भी जब जिस प्रकार जिस ढंग से होना है होता है। यह प्राणी व्यर्थ ही भय करके अपने आपको विह्वल बनाये रहता है। सम्यग्ज्ञानमें अद्भुत सामर्थ्य है। इस जीवको शान्ति उत्पन्न करने वाला यह एक ज्ञानप्रकाश है। जीवका और धन है ही क्या? अभिन्न धन वास्तविक धन एक ज्ञान ही है। सच्चा ज्ञान जगे, भेदविज्ञानको प्रकट करता हुआ ज्ञान जगे तो अब वह ज्ञान भी इसका रक्षक बन सकता है, अन्य कोई जगत् में शरण नहीं है।

अकृताभीष्टकल्याणमसिद्ध रब्धवाञ्छितम्।

प्रागेवागत्य निस्त्रिसो हन्ति लोकं यमःक्षणे ॥११०॥

मरणकालमें अज्ञानियोंकी दृष्टि—जो प्राणी ऐसे हैं जिन्होंने अपने अभीष्ट कल्याण का कार्य नहीं किया और न अपने आरम्भ किये हुए इष्ट कार्यको पूर्ण कर पाया ऐसे लोगों को तो यह काल सबसे पहिले मार डालता है। इसमें यह बात दिखाई है कि प्रायः सब लोग ऐसा महसूस करते हैं कि लो अधूराका ही अधूरा सब पड़ा रह गया और यह चल बसा। अच्छा बताओ कौनसी स्थिति ऐसी है जिसको यह पूरा मान ले और फिर मरनेकेलिए तैयार हो जाये? हमारे काम तो सब पूरे हो चुके। अब मुझे कुछ डर नहीं, अब मर जाऊँ तो कोई परवाह नहीं। अरे काम तो किसी के पूर्ण होते ही नहीं।

कृतकृत्यताका अभ्युदय—ज्ञान जगा हो और ज्ञानबल से यह अपना विश्वास ठीक बनाये रहे कि जगत्के इन पदार्थों में मुझे करने का कुछ बाकी ही नहीं। ऐसा श्रद्धान सही बनाये रहे कि मेरे

तो सब कार्य पूर्ण हो गये, कुछ करने को मन में ही नहीं। मैं क्या कर सकता हूँ किसी परपदार्थोंमें? जो कुछ करता भी था किसी परपदार्थके विषय में तो वहाँ भी उस परका कुछ नहीं करता था, केवल अपनी परिणति ही बनाता रहता था और अभी मैं क्या कर रहा हूँ किसीका कुछ? भविष्य में भी मैं किसी परपदार्थ का कुछ भी कर न सकूँगा। लो इस सम्यग्ज्ञान के प्रकाश में हमने सारे कार्य पूर्ण कर लिये। कृतकृत्य किसे कहते हैं? कृतकृत्यका शब्दार्थ है कृतं कृत्यं येन सः कृतकृत्यः। जिसने करने योग्य सब काम कर लिये हों उसे कृतकृत्य कहते हैं। करने योग्य काम क्या हैं? मुझे किसी पदार्थ में कुछ करने को पड़ा ही नहीं है, इस प्रकार का ज्ञानप्रकाश जगना प्रथम तो यही एक करने योग्य काम है। जिसने यह कर लिया वह कृतकृत्य कहलाता है, वह कृतकृत्य हो जाता है।

अधूरी परिस्थितिकी पूर्तिका अभाव—लोग यह महसूस करते हैं कि हमारे सब कार्य अधूरे रह गये और देखो वह बीच में चल बसा। कोई १०-१५ वर्ष का बालक हो तो उसके कार्य अधूरे हैं या नहीं? हाँ-हाँ सारे काम अधूरे पड़े हैं। अभी विवाह होना है, घर बसाना है, ये सब काम तो पड़े हुए हैं। यदि यह बालक अभी गुजर गया तो उसका अर्थ यह है कि सारे अधूरे काम छोड़कर यह चल बसा। लोगों की ऐसी दृष्टि रहती ना। लो चलो विवाह हो चुका अब तो अधूरे काम नहीं रहे। अरे विवाह हो चुका तो अभी बहुत काम पड़े हुए हैं। सन्तान हो तब तो परिवार चलेगा। बच्चे हो गये, अब तो अधूरा नहीं रहा अरे इन छोटे-छोटे बच्चोंको छोड़कर कहाँ जायें? इससे अच्छा तो यह था कि पहिले ही हम मर जाते। अब तो और भी अधूरे बन गये। ज्यों-ज्यों उमर बढ़ती है, त्यों-त्यों काम और अधूरे होते जाते हैं। अच्छा बतावो यह कब मरे कि पूरे काम हो चुकने पर मरा कहा जाय? बूढ़ा हो गया तो सारे काम पूरे हो गये ना। उस मरने वालेसे कोई पूछे बाबा अब तो तुम्हारे काम पूरे हो चुके ना। अब मरण आये तो कोई परवाह तो नहीं है? अरे अभी पोतोंका सुख तो देखा ही नहीं है। फिर पोतोंका विवाह हो, ये काम काजमें लग जायें, अभी ये सारे काम तो अधूरे पड़े हैं। तो कौनसी स्थिति ऐसी है जिसमें अधूरापन न रहे? यह अधूरेपनकी बात कही जा रही है मोहियों की दृष्टिसे।

जीवकी सर्वदा परिपूर्णता—अपने ज्ञानप्रकाशकी दृष्टिसे देखो यह जीव सदा पूरा है। कभी गुजर जाये, क्या हुआ, यह तो यही है। अपने आपकी दृष्टि हो, अपनी संभाल हो तो यह मिलेटरीके जवानकी तरह सदा मृत्युके सम्मुख जानेको तैयार बना रहता है? लो उठो यहाँसे अच्छा साहब। कहाँ बैठें? यहाँ बैठो। लो बैठ गया। उसका कहाँ बिगाड़ है? जावो इस भवसे। अच्छा लो चले। कहाँ जायें? इस ठौर पर। पहुँच गये। कहाँ बिगाड़ हुआ? यहाँ भी अपने ज्ञानसे श्रद्धान आचरणसे अपने आपके आत्माको प्रसन्न रख रहे थे और दूसरे भवमें जाकर वहाँ भी अपने रत्नत्रयकी उपासना से अपनेको प्रसन्न रख रहे हैं। मौत तो कुमौत उनकी है जिन्होंने धर्मकी आराधना नहीं की, धर्मका पालन नहीं किया।

उदारताका प्रताप—स्वामी कार्तिकेय अनुप्रेक्षामें बताया है कि धनकी तीन गतियां होती हैं, दान कर लो या भोग करलो या नष्ट हो जायेगा। तो उस प्रकरणमें कहते हैं कि जिस पुरुषने न दान किया, न भोग किया, उसके धनविनाशके समय अतीव संक्लेश परिणाम होता है और जिसने दान और भोग किया उसके संक्लेश नहीं होता। यह तो ठीक है, पर जिसने दान नहीं किया, किन्तु खूब खाया पिया, मौज किया, भोग उपभोग किया उसके भी वियोग समयमें उतना खेद न होगा जितना कि न दान किया, न भोग किया ऐसे कृपणको खेद होता है। स्पष्टरूपसे इस बातको समझाया है तो मरणके समय अज्ञानी जीवोंको ही खेद होता है। ज्ञानी पुरुष तो किसी भी समय मरणको तैयार हैं, घबड़ाते नहीं हैं।

धर्मारारधनकी शीघ्र कर्त्तव्यता—इस श्लोकमें यह भाव दर्शाया है कि करने योग्य काम, धर्मआराधना काम झट संभाल लो। अचानक कभी मृत्यु होगी उस समय यह क्लेश मानेगा कि हाय! जीवन मैंने यों ही खोया। मैं कुछ धर्म नहीं कर पाया। सच जाने मरण समयमें खेद होगा कि मैंने धर्म नहीं अपनाया। तब आगामी क्लेशसे बचना हो तो इस धर्मभावको, ज्ञानभावको अपनावो और सम्यग्ज्ञानी बनकर अपने अन्तरङ्गमें प्रसन्न रहो।

**भ्रूभङ्गारम्भभीतं स्वलति जगदिदं ब्रह्मलोकावसानम्।
सद्यस्त्रुट्यन्ति शैलाश्चरणगुरुभराक्रान्त धात्रीवशेन।
येषां तेषां प्रवीराः कतिपयदिवसैः कालराजेन सर्वे।
नीता वार्तावशेषं तदपि हतधियां जीवितेऽप्युद्धताशा ॥१११॥**

पुराण पुरुषोंके चरित्रका कथा शेष—ऐसे-ऐसे वीर पुरुष जिनकी भौंहके कटाक्षके होने मात्रसे ही यह ब्रह्मलोक पर्यन्त जगत भयभीत हो जाता है। ऐसे-ऐसे वीर पुरुष जिनके चरणोंके भारके कारण पर्वत तत्काल खण्डित हो जाते हैं ऐसे वीर पुरुषोंकी अब कहानी मात्र सुननेमें आती है। वे अब रहे कहाँ? रावण बहुत विद्यावोंका धारी था। उसने एक बार कैलाश पर्वतको भी हिलानेकी कोशिश की थी। वहाँ तो एक साधुराजकी तपस्याके प्रतापसे वह नहीं ढाया जा सका, किन्तु ऐसे-ऐसे कितने ही अन्य पर्वतोंको ढाने की उसमें सामर्थ्य थी और उपद्रव भी किया होगा लेकिन आज केवल कहानी भर सुनने को रह गयी है। कितने ही लोग तो अब भी राम रावणको उपन्यासके ढंग से देखते हैं। किसीका कहना है कि वे हुए ही नहीं हैं। कुछ लोग तो यों भी कहते हैं कि ऐसे उपन्यासोंसे शिक्षाकी बात जल्दी समझमें आ जाती है, इसलिये ऐसी शिक्षा देनेके लिये ये उपन्यास बनाए हैं। मतलब यह है कि हमारे पुराण पुरुष इतने वीर उदार और सुभट हुए हैं कि उनके चरित्र बलका आज कल लोग अंदाजा भी नहीं कर पाते। वे अब यहाँ नहीं हैं, उनकी कहानी मात्र शेष है। चला आया है आगममें वर्णन। हम कहते हैं यह अयोध्या नगरी है, यहाँ इतने टीले पड़े हैं। ये सब प्राचीन महल थे, सोचते जाते हैं। होंगे भी, लेकिन आज ये कोई नहीं हैं। यों ही समझो कि यहाँके लोग हम आप किसी वैभव,

किसी अभिमान, किसी अहंकार के कारण कितने ही जो वाचालपना करते हैं करलें किन्तु रहेगा कुछ नहीं। यह जीव इस संसारमें अशरण है, इसे कोई दूसरा शरण नहीं है। ऐसे-ऐसे महापुरुष भी जब कालके वशीभूत हो गए, फिर यह पर्यायबुद्धि जीव अपने जीवनकी बड़ी आशा रख रहा है। यही तो एक बड़ी भूल है।

परमार्थ शरणके परिचयसे अशरणभावनाकी सफलता—अशरण भावनामें यह तो भा रहे हैं कि मेरा कोई शरण नहीं है, पर ऐसा ख्याल करनेसे तो क्लेश कई गुना और बढ़ता जायेगा। भावनासे फायदा क्या हुआ? मुझे कोई शरण नहीं, मेरा कोई रक्षक नहीं। ऐसा सोचनेसे तो भय बढ़ेगा और खुदको कष्ट बहुत पहुँचेगा। फिर यह भावना धर्मरूप कैसे? समाधान यह है कि परपदार्थ कोई शरण नहीं है। ऐसा कहनेमें यह बात अन्तरमें छिपी हुई है कि मेरे लिये मेरा यह ध्रुव आत्मा शरण है। निजके शरणका परिचय जिसने किया है उस ज्ञानीके यह अशरण भावना धर्मरूप है, किन्तु जिसने अपने शरण का परिचय नहीं पाया है उस अज्ञानी जीवको तो मेरा कोई रक्षक नहीं, मेरा कोई शरण नहीं, ऐसी बातें सोचना उसका केवल रोना ही रोना रूप है।

निजस्वरूपके आदरमें शान्तिलाभ—हम अपने आपके शरणभूत इस निजस्वरूपका आदर करें। मेरा इस जगतमें मेरे सिवाय अन्य कुछ नहीं है। मेरा इस जगतमें रंच मात्र भी कुछ नहीं है। दुःख और किस बात का लग रहा है इस जीवको? इस ही बातका तो क्लेश है कि हैं तो ये सब बाह्य पदार्थ और उन्हें अपने मन माफिक कराना चाहते हैं। बाह्य पदार्थोंमें जैसी उनकी योग्यता है उसके अनुसार ही तो वे परिणमेंगे। दुःख मिटाना हो तो अपने आपके स्वरूपका आदर करो। मैं अपने उस ऐश्वर्यको देखूँ जो मेरा सहज है। इस ज्ञानानन्दस्वरूपको तक्कूँ, इसमें ही रत रहूँ, इसमें ही संतुष्ट होऊँ, ऐसी भावना बनाएँ, ऐसा अन्तरङ्गका झुकाव करें यह तो है सारभूत बात और बाह्य पदार्थोंके प्रति, अन्य जीवोंके प्रति अपनी आसक्ति और कल्पनाएँ बढ़ाना, यह है केवल कष्टकी बात।

रुद्राशागजदेव दैत्यखचरग्राहग्रहव्यन्तराः!

दिक्पाला प्रतिशत्रवो हरिबला व्यालेन्द्रचक्रेश्वरः।

ये चान्ये मरुदर्यमादिबलिनः संभूय सर्वे स्वयम्।

नारब्धं यमकिङ्करैः क्षणमपि त्रातुं क्षमा देहिनम् ॥११२॥

कालगृहीत प्राणीकी अरक्ष्यता—जिस प्राणी पर यह मृत्यु मँडरा जाती है, मरणकाल आता है, यह काल अपनी कलासे जिस प्राणीको पकड़ लेता है उसकी रक्षा करनेमें ये कोई भी समर्थ नहीं है। चाहे रुद्र भी हो कोई। रुद्र एक बहुत कुछ पहुँचे हुए अनेक विद्यावोंके धनी होते हैं जिनको देवी देवता बहुतसे किंकर होनेके लिये प्रार्थना कर चुके हैं और इस प्रलोभनमें थोड़ी चूक खाई है। इससे लोककार्योंमें प्रवेश किया है, ऐसे कोई रुद्र महापुरुष, आखिर विद्यावोंके धनी तो वे हैं ही, उनमें भी यह सामर्थ्य नहीं है कि किसी मरते हुये जीवकी रक्षा कर दें। बड़े दिग्गज देव और दैत्य जिनके दिव्य

शरीर हैं, भूख प्यासकी वेदनाओंसे रहित हैं, ऐसे बड़े देवता भी इस मरणहार जीवको बचानेमें समर्थ नहीं हैं।

संसार संकट—यह संसार संयोग वियोगका पिण्ड है। इसमें वेदना और है ही क्या? जिस किसी भी बाह्य पदार्थको इष्ट मान लिया, इन इन्द्रियविषयोंके साधनमें सहायक होनेसे, किसीको अनिष्ट मान लिया इन इन्द्रियविषयोंके साधनमें बाधक होनेसे तो फिर इष्टके संयोगको तरसता है, अनिष्ट के वियोगको तरसता है, इष्टके वियोगसे भयभीत है। बस यह ही तो केवल दुःख है जीवोंके। ये सारे दुःख एक अपने स्वरूपकी संभालमें जरासे बाह्यपदार्थोंकी उपेक्षासे, ललकारसे ये सब संकट समाप्त हो जाते हैं। जैसे बड़े बलवान भी चोर चोरी करनेको घरमें घुसे हों तो बुढ़िया यदि घरमें जरासा खांस दे तो वे सारे चोर उल्टे पैर भाग जाते हैं, ऐसे ही ये सब संकट चोर विपदा उपसर्ग वेदनाएँ सभी इस आत्मगृहमें घुस आये हैं, किन्तु यह आत्मा जरा भी ललकार करे, अपने स्वरूपको संभाले तो ये सब संकट भी यथाशीघ्र विदा हो जाते हैं।

स्वरूप संभाल—सुखी होनेकी कला हम आप सबमें पड़ी हुई है, परन्तु उस कलाका उपयोग नहीं करते और दुःखी हो रहे हैं। वह कला क्या है? अपने स्वरूपका यथार्थ दर्शन कर लें, इतनी भर कला है। समस्त परपदार्थोंसे निराले देहसे भी विलक्षण केवल ज्ञानानन्द स्वरूपमात्र मैं हूँ, यह मैं अमूर्त हूँ। ऐसे इस अमूर्त जीवास्तिकार्यकी पहिचान हो तो वहाँ संकटोंका क्या काम है? गोले भी बरस रहे हों, बम भी पड़ रहे हों और बन जाय कदाचित् ऐसी संभाल किसी ज्ञानी जीवके कि मैं तो अमूर्त आत्मतत्त्व हूँ। यद्यपि ऐसी स्थितिमें हम आपके दिमागके अनुसार कठिनसी बात लग रही है कि वहाँ हम अपना स्वरूप संभाले बैठ सकेंगे क्या? लेकिन स्वरूप संभाल सकने वाले भी ज्ञानी पुरुष मिलते ही हैं, होते ही हैं। उस समय इस अमूर्त ज्ञानानन्द स्वरूपमात्र अपने आपकी संभाल करें तो वहाँ कौनसा कष्ट है? जहाँ इस संभालसे चिगे और केवल अपने प्राणोंकी ही बात नहीं, बाह्यमें भी परिजन वैभवका वियोग हुआ कि यह जीव भयभीत हो जाता है, हाय! क्या हुआ? कितने संकट हों, समस्त संकटोंको समाप्त करनेका अमोघ साधन अपने शुद्धस्वरूपकी संभाल है।

कालगृहीत प्राणीकी रक्षामें विद्यासमृद्धिवन्तोंकी भी अक्षमता—जब यह जीव कालके गलसे गृहीत हो जाता है तो इसे बड़ा विद्याधर भी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं है। जो आकाशमें विमानों पर चलें, स्मरणमात्रसे देव आकर एक सशस्त्र विरोधीसे युद्ध कर दें, अनेक विद्याएँ भी जिन्हें सिद्ध हैं, ऐसे विद्याधर भी इस मरते हुए जीवकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं। देवता गृहव्यंतर दिग्पाल आदि ये सब मिलकर भी इस जीवको बचाने में समर्थ नहीं हैं। कभी तो ऐसा भी हो जाता है कि कोई मित्र बचानेकी कोशिश करता है और उस मित्रकी उस कोशिशके निमित्तसे ही मरण हो जाता है। हितैषी परिजन रोगी को अच्छीसे-अच्छी औषधि खिलानेका यत्न करते हैं, कभी उसकी ही इस चेष्टासे उसके

ही द्वारा दी हुई औषधिसे उसकी मृत्यु हो जाती है। कौन रक्षक है इस जीवका? महापुरुषोंमें नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र ये भी इस मरणहार जीवको बचा नहीं सकते।

नारायण, प्रतिनारायण व बलभद्रकी भी कालग्रस्त प्राणीकी रक्षामें अक्षमता—नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र ये तीन पदवियां हैं, नाम नहीं हैं। नारायणपद, प्रतिनारायणपद और बलभद्र। नारायण और बलभद्र भिन्न-भिन्न होते हैं, किन्तु प्रतिनारायण और नारायण से पहिले नारायण जैसा ही वैभव भोगते हुए और नारायणके अभ्युदयके समय ये प्रतिनारायण प्रतिपक्षी बनकर नारायणके द्वारा घाता जाता हो वह प्रतिनारायण है। जैसे कृष्णजी के समय श्री कृष्ण नारायण बलदेव बलभद्र और जरासिंध प्रतिनारायण थे। श्रीरामके समय लक्ष्मण नारायण श्रीराम बलभद्र और रावण प्रतिनारायण था? इन जीवोंके उनके समयमें कितना बड़ा वैभव ऐश्वर्य था, कितना प्रताप था। वह सब प्रताप केवल एक उनके पुण्यके अनुकूल फैल सका था, किन्तु यह बल किसी में न था कि किसी मरणहार पुरुषको बचा सकें। यह सब इसलिये कह रहे हैं कि तुम अपनी कल्पनाएँ जिस किसीको शरण मानकर उसको अपना आत्मसमर्पण मत करो अर्थात् यह प्रत्यय मत करो कि मेरे ये शरण हैं। अपने आपके शाश्वत स्वरूपकी खबर मत तर्जें।

कालग्रस्त प्राणीकी रक्षामें देवोंकी भी अक्षमता—धरणेन्द्र व्यंतरोंमें बहुत प्रसिद्ध और प्रभुभक्त देव होते हैं। प्रभु पार्श्वनाथके उपसर्गके समय धरणेन्द्र और धरणेन्द्रकी देवी पद्मावतीने अपनी आराधनाका विषय बनाया था, प्रभुका उपसर्ग टाला था। ऐसे विशिष्ट धरणेन्द्र जैसे देव भी इस मरणहार जीवको बचानेमें समर्थ नहीं होते, तब हम आप लोगों की कहानी क्या है? कोशिश सभी करते हैं घरके जो इष्ट पुरुष होते हैं वे उस मरने वालेको बचानेका बड़ा यत्न करते हैं, पर वे कोई भी उसे बचा नहीं पाते हैं। आंखों देखते ही वह इस संसारसे विदा हो जाता है। लो अब इसके प्राण पेट तक हैं, पैर तो ठंडे हो ही चुके हैं, लो अब गले तक प्राण चले आए, लो अब प्राण एकदम निकल गए। सारा दृश्य आंखों देखते रह जाते हैं पर कोई किसीको मरनेसे बचा सकता है क्या? ये देव, पवन, सूर्य आदिक बड़े बलिष्ठ देहधारी सबके सब एकत्रित हो जायें तो भी इस प्राणीको कालसे बचा नहीं सकते। यह है इस संसारकी स्थिति।

स्वयंका शरण लेनेकी सम्मति—भैया! अपने आपके स्वरूपमें अपनेको निरखो तो किसीसे भीख मांगनेकी, मरणसे रक्षा पानेकी, कुछ सोचनेकी आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि यह है व सदा रहेगा। केवल इस सत् स्वरूप निजतत्त्वसे रुचि हो तो कहीं कष्ट नहीं है। लेकिन अनात्मकतत्त्वमें इसे प्रीति जगी है तो अपराधका फल तो भोगना ही पड़ेगा। अपने आपके स्वरूपकी दृष्टि न रहे वह सब अपराध है। उस अपराधके फलमें अनेक वेदनायें सहनी होती हैं। हे भाई! इस मृत्युसे रक्षा करने वाला न तो कोई हुआ और न कभी होगा। तू अब बाह्यमें शरणको न ढूँढकर अपने आपके स्वरूपकी संभाल कर। यही पुरुषार्थ एक वास्तविक शरण है।

आरब्धा मृगबालिकेव विपिने संहारदन्तिद्विषा,
पुंसां जीवकला निरेति पवनव्याजेन भीता सती।
त्रातुं न क्षमसे यदि क्रमपदप्राप्तां वराकीमिमा,
न त्वं निर्घृण लज्जसेत्र जनने भोगेषु रन्तुं सदा ॥११३॥

श्वासके ब्याजसे जीवनकला का निर्गमन—हे पर्यायमुग्ध प्राणी! देख, जिस प्रकार वन में मृगके बच्चेको सिंह पकड़नेका आरम्भ करता है और वह मृग बालक भयभीत होकर भागता है ऐसे ही समझ कि इस जीवके जीवनकी कला कालरूपी सिंहसे भयभीत होकर श्वासोच्छ्वासके बहानेसे दूर भाग रही है; जैसे मृगबालिका पर सिंहका आक्रमण होता है, मृत्युका आक्रमण होता है। तो यह जीवनकला श्वासके रूपसे दौड़-दौड़कर बाहर निकल रही है और फिर कितना ही भागे वह मृगबालिका, आखिर वह सिंहके पैरों तले आ जाती है। इसी प्रकार जीवोंके जीवनकी कला कालमें क्रमसे अन्तको प्राप्त हो जाती है, तो समझ तू अपनी ही रक्षा करनेमें समर्थ नहीं है, दूसरोंकी तो क्या रक्षा करेगा? परकी ओर दृष्टि देकर कातरताका भाव मत लावो।

खेद व आनन्द पानेकी स्वकला—अरे यह जीवन तो एक मायारूप है, मेरा स्वभाव नहीं है। मेरे शुद्ध आनन्दके महत्वको नष्ट करने वाला यह एक कलंक है जीवन। इसका जो शाश्वत जीवन है शुद्ध ज्ञानज्योतिरूप अनुभव करना है, उस पर किसका आक्रमण है? जो चीज नष्ट हो जाती है उसको हम अपना मानें सो उसमें खेद है। नष्ट हो जाने वाली चीजको हम अपनी ही न समझें तो फिर खेद किस बातका? देखिये जिस पुरुषको किसी कल्पनासे खेद आ गया है वह तो अब सारी दुनियाको खेदमयी ही निरखता है। खुद खेद खिन्न है तो उसके उपयोगमें खिन्नता ही है सर्वत्र और जिसके चित्तमें सम्भोग है, वैराग्य है, यथार्थ ज्ञान है और उस सम्यग्ज्ञानके प्रतापसे एक शुद्ध संतोष हो रहा है तो सर्वत्र प्रसन्नता ही नजर आती है। देख तू बाहरमें किसीकी रक्षा करनेका विकल्प करे या किसीसे मेरी रक्षा हो, ऐसा विकल्प करे तो तू अपने आप पर निर्दयी बन रहा है, क्योंकि इस विकल्पजालसे अपने आपकी शान्तिको भंग कर रहा है।

मूढ़ विपन्नकी उपहास्य करतूत—तू इस जगत्में इन इन्द्रिय विषयोंमें रमनेका उद्यमी होकर प्रवृत्ति कर रहा है। मृत्यु तो तेरे केशोंको पकड़े हुए है और तू विषयोंमें लग रहा है। जैसे किसी पुरुषको फांसीका हुकुम दिया गया हो और वह फांसीसे पहिले खूब खाने पीनेमें लीन हो रहा है। तो लोग उसकी मूर्खता पर मन ही मन हंसते हैं। अभी तो प्राण जायेंगे और यह लड्डू, पूड़ी, कचौड़ी, हलुवा खानेमें मस्त हो रहा है। ऐसे ही जगत्के प्राणी मृत्युके द्वारा ग्रहीत हैं। पता नहीं कब यह यम अचानक आ पड़ेगा, लेकिन यह प्राणी बेसुध होकर पञ्चेन्द्रियके विषयोंके रमण कर रहा है। यह तो अपने आप पर निर्दयताका काम है। ऐसी अशोभनीय विरुद्ध बात करते हुये हे आत्मन्! तुम्हें लज्जा नहीं आती और भी बात देखो तू यह देख रहा है कि यह प्राणी कालके वश है, मरने वाला है और

फिर भी तू उसमें रम रहा है तो यह कैसी लज्जाकी बात है। अरे तू शुद्ध भावना कर और दूसरोंको भी शुद्ध भावनाका अवकाश दे और इस संसारकी इन विषय आपदावोंसे बच। अपने आपको अकेला शुद्ध ज्ञानानन्दमात्र निरख। यह देह भी तो मेरा नहीं है। मैं तो केवल ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मतत्त्व हूँ। इस शरणभूत निज परमात्मत्वकी भावना करो और बाह्य पदार्थोंसे अपनेको अशरण मानो।

पाताले ब्रह्मलोके सुरपतिभवने सागरान्ते वनान्ते।
दिवचक्रे शैलशृंगे दहनवनहिमध्वान्तवज्रासिदुर्गे।
भ्रूगर्भे सन्निविष्टं समदकरिघटा सङ्कटे वा वालीयान्।
कालोडयं क्रूरकर्मा क्वलयति बलाज्जीवितं देहभाजाम् ॥११४॥

पाताल और ब्रह्मलोकमें भी जीवनकी अरक्षितता—यह काल ऐसी बली है कि यह किसी भी संसारी जीवको बलात्कारपूर्वक ग्रस लेता है, यह जीव चाहे पातालमें बैठा हो जो कि हम आप सबके लिए दुर्गम्य है, कहाँसे पाताल जाये, इतनी मोटी पृथ्वी है जिसके तलभागमें पाताल लोक बस रहा है वहाँ जीवोंका गमन बहुत कठिन है। ऐसी जगह भी कोई जीव बैठा हो, वहाँका उत्पन्न हुआ जीव भी इस कालके वशीभूत होकर अपना जीवन खो देता है। यह चाहे ब्रह्मलोकमें बैठा हो, उत्पन्न हो, अवस्थित हो वहाँ भी यह जीव सुरक्षित नहीं रहता। ब्रह्मलोकसे मतलब ऊर्ध्वलोकके मध्य भागमें ब्रह्मलोक माना गया है, ऊर्ध्वलोकके बीचमें भागे, वहाँ भी कोई जीव अवस्थित हो उसका भी जीवन सुरक्षित नहीं है। जब आयुका अन्त होता है तो वहाँ भी इस जीवको उस देहसे जाना पड़ता है। कहाँ यह जीव जाये कि यह मृत्युसे बच सके? कोई ऐसा स्थान नहीं है।

इन्द्रभवनमें भी जीवनकी अरक्षितता—यह जीव इन्द्रके भवनमें भी बैठा हो, ऊर्ध्वलोकमें कल्पवासियोंके २४ इन्द्र प्रतीन्द्र होते हैं और ऊपर तो सभी ही इन्द्र हुआ करते हैं। उन इन्द्रोंके भवमें भी कोई अवस्थित हो, वह भी सदाकाल जीवित नहीं रह सकता। स्वयं इन्द्र भी सदाकाल नहीं रह सकता। भले ही बहुत लम्बी आयु है और उस लम्बी आयुके कारण उन्हें अमर कहा करते हैं किन्तु अन्त उनका भी है। यह जीव बहुत दूर समुद्रके तट पर भी चला जाय, जैसे कहते हैं ना चारों ओरके धाम, बहुत दूर समुद्रके तट भी पहुँच जाय इस कालसे बचनेकेलिए कि यह काल वहाँ न आ सकेगा, बहुत दूर चला जाय, लेकिन वहाँ भी जीवन सुरक्षित नहीं है। आयुका अन्त होने पर वहाँ भी मरण करना पड़ता है। कहीं दुर्गम बनके पार भी पहुँच जाय शायद इस गहन बनकी उलझनके कारण काल वहाँ न पहुँच सकेगा, यों मानो बनके पार भी कोई जीव पहुँच जाय वहाँ भी इस जीवका जीवन सुरक्षित नहीं है। वहाँ भी मरना ही पड़ता है।

मरणकी दहल—मरण का भय इन संसारी जीवोंको लगा हुआ ही है। कितनी भी उमर हो जाये पर मरणकी सम्भावना समझमें आये तो उस वृद्धका भी दिल दहल जाता है। हाय! अब मुझे यहाँसे मरना पड़ रहा है। बहुतसे वृद्ध पुरुष अथवा बुद्धिया अपने शारीरिक दुःखके कारण ऐसी प्रार्थना करते

हैं कि हे भगवन्! मुझे उठा लो। अर्थात् मेरा मरण हो जाय, ऐसे अहर्निश प्रार्थना करने वाले बूढ़े और बुढ़िया मरणका अवसर सामने आने पर दहल जाते हैं। मान लो कोई साँप निकल आया निकट तो क्या वे घबड़ाते नहीं हैं? क्या घरके बच्चोंको पुकारते नहीं हैं? ऐ बच्चों देखो साँप यहाँ निकला है, जल्दी आकर मुझे बचावो। यदि बच्चे यह कह दें कि अरी बुढ़िया दादी तू तो भगवानसे प्रार्थना किया करती थी कि मुझे उठा लो, तो तुम्हारी प्रार्थनाको ही सुनकर भगवान्ने इसे तुम्हें उठानेके लिये भेजा है, तू क्यों इतना डरती है? यदि कोई मजाकिया यों कह दे तो उसका उत्तर क्या? सब मरणसे भय किया करते हैं।

मरणसे बचनेके उपायोंकी व्यर्थता—इस मरणसे बचनेके लिये लोग सारे उपाय बनाया करते हैं, अच्छा मजबूत मकान बनवाते, अपने सब तरहके भोजन पान आदिक आरामके अन्य साधन बना लेते, सब कुछ करते हैं लेकिन कोई यहाँ सदा जीवित रह सका क्या? बड़े-बड़े महापुरुष भी नहीं रहे तो अपनी बात सोचो। यदि यह दृश्य सामने नाचने लगे कि मेरा मरण तो किसी भी क्षण हो सकता है, तो फिर आकुलता न रहेगी। लोग तो मरणकी सम्भावनामें आकुलता मचाते हैं, लेकिन विवेकी पुरुष मरणकी सम्भावनाको सामने रखकर निराकुल रहनेका यत्न करते हैं। लोग बड़ी चिन्ताएँ कर रहे हैं अगले वर्षकी घटनावोंके लिये। यदि यह अभी ही गुजर गया तो फिर कहाँ इसका सम्बन्ध रहा इस लोकके वैभवसे? यह जीव इस मरणसे बचनेके लिये बहुत-बहुत उपाय करता है, लेकिन सब उपाय इसके निष्फल चले जाते हैं।

दिगन्त और भीड़में भी जीवनकी असुरक्षिता—यह जीव मरणसे बचनेके लिये दिशावोंके अन्तमें भी पहुँच जाय जिन्हें पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर कहते हैं, बहुत अधिक दूर पहुँच जाय तो वहाँ भी इनका जीवन सदा नहीं रहता। मरना पड़ता है। यह तो बहुत छोटी दूरकी बात कह रहे हैं। इस लोकके बिल्कुल अन्तमें जहाँ सिद्ध जीव बसा करते हैं वहाँ जो निगोद जीव भरे हुए हैं वे अपनी ही मौतसे एक श्वासमें १८ बार जन्म और मरण किया करते हैं। कहाँ जावोगे? इस कालका तो सर्वत्र प्रसार है। यह जीव बहुत ऊँचे पर्वतके शिखर पर भी चढ़कर वहाँ ठहर जाय, लो अब तो मैं बहुतसी भीड़ से हटकर ऊपर आ गया हूँ, यह काल तो भीड़में तलाश करना फिरेगा कि इसका अन्त कर दें। मैं तो बहुत ही निराले विलक्षण ऊँचे पर्वत पर पहुँच गया हूँ। अब यह मैं सुरक्षित रह जाऊँगा, पर कहाँ सुरक्षित रह सकता है? यह जीव कहीं भी चला जाय सुरक्षित नहीं रहता।

अग्नि और जलमें भी जीवनकी असुरक्षिता—ऐसे भी जीव हैं जो अग्निमें जीवित रहते हैं। अग्नि खुद जीव है, इससे बढ़कर और सुरक्षित स्थान क्या होगा? काल आयेगा तो वह ही पहिले अग्निमें भस्म हो जायेगा। अग्निके मध्य भी कोई जीव हो तो भी काल द्वारा ग्रस जायेगा। कोई गहरे जलमें छिप जाय, जलमें बहुतसी सुरक्षा रहती है। जब कोई मधुमक्खी इस मनुष्यको सताने लगती है उस समय इस मनुष्यके पास अन्य कुछ उपाय नहीं है। कहाँ जायेगा? पेड़ पर चढ़ जायेगा तो

मधुमक्खी वहाँ भी सतायेगी, किसी जगह गुफामें चला जाय तो ये मधुमक्खी वहाँ तक भी पहुँचेगी। एक जलका स्थान ऐसा है कि जलमें डूबकी लगाते तो मधुमक्खी जलके भीतर प्रवेश नहीं कर सकती। तो वहाँ देखो यह पुरुष सुरक्षित रह गया ना? यों कोई जलके अन्दर भी ठहर जाय तो भी सुरक्षित नहीं है। उसका भी मरण हुआ करता है।

हिमालयादि दुर्गम स्थानोंमें भी जीवनकी अरक्षितता—कोई जीव एकदम हिमालयमें पहुँच जाय। हिमालय इस व्यवहारकी दुनियासे एक निराला स्थान है। वह देशके एक कोने पर है, वहाँ भी पहुँच जाय कोई अथवा वहाँका उत्पन्न हुआ हो कोई तो वह जीव वहाँ भी सुरक्षित नहीं है। वह भी कालके वशीभूत होता है, जन्म-मरण करता है। जीवनमें सार क्या है? जी रहे हैं कितने दिनोंको और जीकर भी सारभूत बात क्या लूट ली है? इस जीवनमें भी क्लेश ही क्लेश है और जब जीवनका अन्त होता है तब भी क्लेश है। यहाँ शरण कुछ नहीं है। किसी भी बाह्य स्थानको शरण मानकर यह जीव ऐसे-ऐसे दुर्गम स्थान पर भी पहुँच जाये तो भी आयुर्कर्म तो सब जीवोंका उनके साथ ही है। वह जहाँ है तहाँ ही आयुगमन है, अन्त होगा और उन्हें वहाँ मरण करना पड़ेगा।

अंधकारमें भी जीवनकी अरक्षितता—यह जीव गहन अंधकारमें पहुँच जाय, लो अब अंधेरेमें यह काल कहाँ ढूँढ लेगा? जब कृष्णपक्षकी अमावस्या जैसी गहन रात होती है, उसमें अपने ही हाथ-पैर अपनेको नहीं सूझते, और कभी-कभी तो अपने अंगों को छूनेमें भी, परखनेमें भी देर लग जाती है। ऐसे गहन अंधकारमें हम पहुँच जायेंगे तो वहाँ सुरक्षित रह जायेंगे। किसीकी नजर भी नहीं जा सकती। भाई ऐसे गहन अंधकारमें भी पहुँच जाय तो भी जीवन सुरक्षित नहीं है। जो जीवित हुआ है वह मरण भी नियमसे पायेगा।

वज्रमयी स्थानोंमें भी जीवनकी अरक्षितता—भैया! खोजिए कोई संसारमें बहुत मजबूत स्थान जहाँ कालका कुछ भी प्रवेश न हो, ढूँढो कोई स्थान। अच्छा लो चलो किसी वज्रमयी स्थानमें चलें, जिस वज्रको कोई भेद न सके ऐसे वज्रमयी स्थानमें यह जीव पहुँच जाय तो वहाँ भी वह सुरक्षित नहीं है। कारण यह है कि कोई मारने वाला अलगसे नहीं है जिसकी आंखोंसे बचकर हम अपने जीवनको सुरक्षित बना लें। इस जीव के साथ अष्टकर्म लगे हुए हैं, उनमें एक आयुर्कर्म है। उस आयुर्कर्मके क्षय होने पर जो कि होता ही है, निषेक उदयमें आ रहे हैं तो कभी तो समाप्त होंगे ही। बस उस आयु कर्मके गलनेका नाम ही मरण है और इस मरण होनेके बाद भी छुटकारा मिल जाय तो वह भी भला था। लेकिन मरणके बाद इस जीवको जन्म लेना पड़ता है, यही कष्टकी बात है अथवा जन्म लेनेका नाम ही मरण है। यों इस जीवके साथ ही आयुर्कर्म लगा है और वह सर्वत्र है। जहाँ जीव जाय वह ही है। सो उस आयुर्कर्मके अन्तमें इसको मरना ही पड़ता है।

पहरे व गढ़कोटोंमें भी जीवनकी अरक्षितता—अब और कोई सुरक्षित स्थान देख लो तलवारमयी पहरेदारों के पहरा दिये हुए कमरेमें कोई चला जाय तो शायद वहाँ जीवन पूर्ण रक्षित

रहेगा, क्योंकि चारों ओर नंगी तलवार लिये पहरेदार लगे हुए हैं? अरे वहाँ भी इस जीवकी रक्षा नहीं हो सकती। जब आयुका अन्त होता है तो उसे भी मरना पड़ता है अन्यथा पूर्वकालमें कितने बलिष्ठ राजा हो गए, कोई बचा भी है आज क्या? कोई नहीं बचा। कहाँ जाय यह जीव कि मरणसे बच जाय? शायद बड़े मजबूत गढ़कोट जैसी भूमि पर यह जीव पहुँच जाय तो वहाँ इसकी रक्षा हो सकेगी? खूब गढ़ बना है, उस मजबूत गढ़के मध्यमें बैठा है और वह भी एक बाहरी गढ़, उसके भीतर मझोला गढ़ और उसके भीतर खास अन्तरंगगढ़ उसमें बैठा हुआ कोई जीव यह सोचता हो कि मेरा यहाँ कैसे मरण होगा? हमने तो इतना डबल तिबल प्रबन्ध कर डाला है, लेकिन इस प्रबन्धसे होता क्या है? जब आयुका अन्त समय होता है तो इस जीवको संसारसे विदा होना ही पड़ता है। कहाँ जाय यह जीव? बड़े मदनोन्मत्त हस्तियोंके समूहमें रहे, उन हस्तियोंका प्यारा बनकर भी रहे तो वहाँ भी इसका जीवन सुरक्षित नहीं है।

स्वदृष्टिकी ही शरण्यता—किसी भी जगह यह काल, यह आयुक्षय बलपूर्वक जीवके जीवनको ग्रसीभूत कर लेता है। इस कालके आगे किसीका वश नहीं चलता। इस अशरण भावनामें इस प्रकरणको सुनकर हमें यह निश्चय करना चाहिये कि बाहरमें मुझको कुछ भी शरण नहीं है। केवल यह मैं ही अपनेको ठीक सही रूपमें दिख जाऊँ तो यही शरण है।

अस्मिन्नन्तकभोगिवक्त्रविवरे संहारदंष्ट्राङ्किते।

संसुप्तं भुवनत्रयं स्मरगरव्यापारमुग्धीकृतम् ॥

प्रत्येकं गिलतोऽस्य निर्दयधियः केनाप्युपायेन वै।

नास्मान्निःसरणं तवार्यं कथमप्यत्यक्षबोधं बिना ॥११५॥

जीवोंकी वर्तमान विपन्नता—हे आर्य सत्पुरुष! देख ये तीनों लोकोंके प्राणी कालरूपी विषकी गहलतासे मूर्च्छित होकर गाढ़ मोह निद्रामें शयन कर रहे हैं, और शयन भी कैसा कर रहे हैं? संहारस्वरूप सर्पको दाढ़ोंसे अङ्कित कालरूपी सर्पके मुखरूप बिलमें गाढ़ निद्रामें सो रहे हैं। देख ये दोनों ही बातें भयावह हैं। एक तो इच्छारूपी विषसे मूर्च्छित पड़े हुए हैं और दूसरे पड़े कहाँ हैं इस कालकी दाढ़में तो इस जीवका क्या शरण होगा? जैसे कोई हिरणका बच्चा जंगलमें रहता है। किसी दिन उसके पीछे सौ शिकारी हाथमें धनुषबाण लिये हुए उसका पीछा कर रहे हैं, उसके मारनेका उद्यम कर रहे हैं और उस हिरनके आगे है कोई विशाल नदी अथवा समुद्र और अगल बगल हैं ऐसे पर्वत जो कि अग्निकी ज्वालासे जाज्वल्यमान् हैं। अब वह हिरणका बच्चा आगे जाता है तो पानीमें डूब जायेगा, अगल-बगल जाता है तो अग्निमें भस्म हो जायेगा, पीछेसे बहुतसे शिकारी उसको मारनेके लिये पीछा किये हुए हैं। अब बेचारा हिरणका बच्चा क्या करे? वह तो विलाप ही करता है। कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? ऐसे ही ये संसारके प्राणी कहाँ जायें, जीवनका अन्त होता है। जीवन के विचित्र समागम होते हैं।

रक्षाका एकमात्र उपाय—यह जीव स्वयं स्वयंके आत्मस्वरूपमें न ठहरकर कहीं भी बाह्यमें दृष्टि बनाये सर्वत्र अरक्षित है। ये कामकी प्रगाढ़ निद्रामें सो रहे हैं। उन सबको प्रत्येकको यह काल निगलता जाता है। इस संकटसे बचनेका अन्य कोई उपाय नहीं है, केवल एक ही यह उपाय है कि प्रत्यक्ष ज्ञानकी प्राप्ति करे। अमर, शाश्वत ज्ञानानन्दधन निज चैतन्यस्वभावकी दृष्टि करे तो इस उपायसे कालके पञ्जेसे निकलनेकी बात बन सके, अन्य कोई उपाय नहीं है। एक अपने ज्ञानस्वरूपका शरण लेनेसे ही इस कालसे रक्षा हो सकती है।

व्यवहारकी पकड़में रक्षा का अलाभ—देखिये जगत्के अन्य जितने भी द्रव्य हैं निश्चय से तो वे अपनी अपनी शक्तिके भोगने वाले हैं, अर्थात् कोई जीव किसी दूसरेका न कर्ता है, न हर्ता है। जो जैसा है तैसा ही है, किन्तु व्यवहारदृष्टिसे निमित्त-नैमित्तिक भाव परखे जाया करते हैं। उन निमित्त-नैमित्तिक भावोंको देखकर यह जीव किसी भी परपदार्थ के प्रति यह शरण है ऐसी कल्पनाएँ कर लेता है और दिखता क्या है इसे? केवल यह कर्म नोकर्म पिंड शरीर जो निःसार है। जैसा आज यह उठा है, बढ़ा है उसका भी तो कोई विश्वास नहीं है, तो व्यवहारदृष्टि चूंकि इन विषयसाधनोंके साथ इसका निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है सो यह अन्य किसी भी पदार्थमें अपनी शरणकी कल्पना कर लेता है। छोटा भी बालक हो, वह भी अपने शरणके पिछानका यत्न करता है।

अपना वास्तविक शरण—निश्चय दृष्टि से देखा जाय तो अपने आत्माका यह आत्माही शरण है और व्यवहारदृष्टिसे विचार कीजिये तो परम्परा सुखके कारणभूत वीतराग भावको प्राप्त हुये ये पंचपरमेष्ठी ही शरण हैं। जब निश्चयदृष्टि संभालते हैं तो खुदको खुदही शरण मिलता है। तो स्वयं यह सशरण है लेकिन स्वयंकी सुध न होने से यह अन्य अन्य जगह जाता है। हे आत्मन्! देख तेरा वीतराग भाव ही वास्तविक शरण है। तो वीतराग पुरुष हैं उनके गुणोंका स्मरण शरण है। यदि वीतरागताकी रुचि जगी है तो यह आत्मा ही एक अपनेको शरण है। व्यवहारसे निरखें तो जो वीतराग हुए हैं वे शरण हैं, अपने, अर्थात् पंचपरमेष्ठियोंकी भक्ति वंदना करनेसे, उनके गुणस्मरण करनेसे अपने आपके स्वरूपकी सुध होती है और स्वरूप के बोध की दृढ़ता होती है। यों व्यवहारमें तो हम आपको पंच परमगुरु शरण है और निश्चय दृष्टिसे अपना यह शुद्ध आत्मा ही शरण है, अन्य कुछ शरण मत मानो अन्यथा धोखा ही धोखा खाना होगा। अपनी एक सीमित आजीविकाका ढंग बनाकर करने योग्य काम तो अपने आपमें जो शरणभूत ब्रह्मस्वरूप है उसकी आराधना करना है, सो व्यवहारमें पंच परमगुरुको आराधना करके और निश्चयमें सर्वसंकटोंसे रहित ज्ञानमात्र निज तत्त्वकी आराधना करके वास्तविक शरणको गहे, काल्पनिक शरणके पीछे न पड़ें।

चतुर्गतिमहावर्ते

दुःखवाऽवदीपिते।

भ्रमन्ति भविनोऽजस्रं वराका जन्मसागरे ॥११६॥

प्राणियोंका जगत्में भ्रमण—इस संसाररूपी समुद्रमें जगत्के ये प्राणी दीन और अनाथसे

बनकर निरन्तर भ्रमण कर रहे हैं। यह संसार समुद्र अति विषम है। चारगतिरूपी महान् इसमें भंवर पड़ी हुई हैं और दुःखरूपी बड़वानल से यह प्रज्वलित है। एक यह आश्चर्य देखो कि पानी में पानीके ही कारण आग पैदा हो जाती है, जिसे बड़वानल कहते हैं। ऐसे ही यह आश्चर्य देखो कि आनन्द शान्तिके पुंज इस आत्मामें विकल्पोंकी विपदाएँ पैदा हो जाती हैं। इस संसारसमुद्रमें ये प्राणी दीन होकर भ्रमण कर रहे हैं। यह दीनता पञ्चेन्द्रियके विषयोंके साधनकी है। इन्द्रियके विषयोंके जो वश न हो वह काहेका दीन? किसके आगे दीन बनेगा? तो ये प्राणी इस संसारसमुद्रमें यों अपने नाथकी सुध भूलकर अनाथ होते हुये यत्र तत्र भटक रहे हैं। आज मनुष्य हैं, इससे पहिले और कुछ थे, फिर और कुछ थे। भिन्न भिन्न भवोंमें भिन्न भिन्न समागमोंसे प्यार किया। आखिर उन्हें भी छोड़ा और उस ही धुनकी प्रगतिमें आज ये कुछ समागम मिले हैं सो यावत्काल ये समागम हैं तब तक इन्हें अपना सर्वस्व समझते हैं। यही सब कुछ है। भेदविज्ञानकी भावना तक भी नहीं जगती। ये कभी मिट जायेंगे, ऐसा ख्याल भी नहीं आता। मिटते होंगे किसी औरके।

पर्यायबुद्धिकी बातें—किसी बच्चेसे कहो, देखो यह है लड़की, तो वह कहेगा कि तू ही होगा लड़की, मैं क्यों होता? वह चूँकि लड़का है ना, इसलिये वह अपनी पर्यायसे भिन्न पर्यायको तुच्छ समझता है इस दृष्टिसे कह रहा है वह बालक। किसी बच्चीसे कहो कि तू तो लड़का है, तो वह भी यही कहेगी कि तू ही होगा लड़का। मैं क्यों लड़का होती? उस लड़कीकी दृष्टिमें लड़के की पर्याय तुच्छ है। क्योंकि वह है ना लड़की की पर्यायमें। किसी बनियेसे कहो यह है चमार, तो वह तो यही कहेगा कि तू ही होगा चमार, मैं क्यों चमार होता? वह चमार होनेका निषेध करता है। हालांकि इसका निषेध करनेमें थोड़ासा यह भी धर्मका लेश हो सकता है कि मैं तो मांसाहार आदिक दोषोंसे रहित हूँ और यह मांसाहार वाली बातको मुझमें लपेट रहा है, पर इतनी दृष्टि बिरलेकी उत्पन्न होती है। एकदम सीधा निषेध तो इस कारण कर दिया जाता है कि अपनी पर्याय, अपना नाम, अपनी जाति अपने को प्रिय है। किसी चमारसे कहो कि यह है बनिया, तो वह कहेगा हट मैं क्यों बनिया होता, तू ही होगा बनिया। उसकी दृष्टि में बनिया ठीक नहीं है। उसे जो पर्याय मिली है वह उस ही पर्यायमें आसक्त है।

पर्यायबुद्धिकी भोगोंमें बेसुधी—जब जब इस भवमें जीवको जो समागम मिला है उसे वह प्यार करता है, अचेतन हो अथवा चेतन, पर यह पता नहीं कि अनन्त भवोंमें ऐसे ऐसे समागम पाये, वे सब समागम छोड़ने पड़े। आज जो कुछ उपभोगमें आते हैं ये सगब अनन्तबार भोगे जा चुके हैं। इसलिये ये जूठे हैं। जैसे एक बार खाया हुआ पदार्थ जूठा हो गया, इसी प्रकार ये भोग उपभोग के समस्त साधन जूठे हो गये हैं। उन जूठोंको ही बार-बार भोग रहे हैं। ये संसारी प्राणी परपदार्थों में आकर्षित होकर दीन बनकर अपने नाथकी सुध भूलकर इस जन्मसागरमें जो कि अति विषम है दुःखके बड़वानलसे दह्यमान हैं ऐसे इस चतुर्गतिके आवर्तोंमें यह डोलता रहता है।

उत्पद्यन्ते विपद्यन्ते स्वकमनिगडैर्वृताः ।
स्थिरेतरशरीरेषु संचरन्तः शरीरिणः ॥११७॥

जीवों की उलझ और सुलझ—ये संसारी जीव अपनी अपनी कर्म बेड़ियोंसे बन्धे हुए स्थावर जीवोंमें और त्रस शरीरमें संचरण करते हुये मरते रहते हैं और उत्पन्न होते रहते हैं। यह दशा है आज। जबकि स्वभाव यह था कि सारे लोकालोकको विशद जानता रहता और अत्यन्त पूर्ण अनाकुलताका अनुभव करता। था तो ऐसा स्वभाव, किन्तु अपनी सुध भूलकर अत्यन्त भिन्न असार जिससे अपना कोई सम्बन्ध नहीं, भिन्न-भिन्न सत्त्व रखने वाले हैं ऐसे चेतन और अचेतन परपदार्थोंमें इसने अपने आपके प्रदेशोंमें विकल्पजाल गूँथ लिया है और जैसे एक हवा का निमित्त पाकर पताका, ध्वजा अपने आपमें ही सुलझ जाती है ऐसे ही ये जीव जो कुछ करते हैं, निमित्त कुछ मिला, अपने आपमें ही उलझते हैं और कभी सुबुद्धि मिले तो अपने आपमें ही सुलझ जाते हैं।

देहधारियोंके निर्माण पर तक्र—कोई यहाँ तक्र करे, कैसे बन जाते हैं? ये जीव ऐसे त्रस बन गया, कीड़ा बन गया, मनुष्य बन गया, पेड़ पौधा बन गया, वे सब किस तरह बन जाते हं? कुछ ठीक ठीक तो समझावो। हम और बातोंको देखो तुम्हें ठीक समझा देंगे। लो घोड़ा यों बन गया, देख लो ना रोटी यों बन गई। बहुतसी चीजें समझा देंगे। जरा कोई मुझे यह तो समझा दे कि ये सब बन कैसे गये? ये गाय, बछिया बन कैसे गये, ये आदमी बन कैसे गये? क्या समझाया जाय? यहाँ तो हम आप लोगोंके हस्तादिक व्यापारों का निमित्त पाकर ये खेल खिलौने, रोटी, घोड़ा, कपड़े बन जाया करते हैं। इन्हें भी कोईअच्छी तरह समझा नहीं सकता। मोटी दृष्टिमें समझमें आता है कि ये पदार्थ यों बन गये। भला बतलावो तो तुमने हाथ का व्यापार किया तो हाथमें किंवा, ये बाह्य पदार्थ ऐसे कैसे बन गये? खैर उसका समाधान शायद व्यावहारिक क्षेत्रके आनेके कारण कल्पना में हो जाता हो, फिर भी यहाँके समाधान की पद्धति निमित्तनैमित्तिक विधि है, उसके बिना समाधानकी कोई दिशा नहीं बन सकती। तब इसी प्रकार ये त्रस स्थावर कीड़े, मकौड़े, पशु, मनुष्य आदिके बननेमें भी वहीं निमित्तिक पद्धतिका विधान है।

परिणामका वातावरण—जीव जैसा परिणाम करता है, इस जीवके ही निकट कोई सूक्ष्म वातावरण ऐसा बन जाता है जो उस परिणामके अनुरूप कुछ प्रभाव डाल सके; जैसे कोई एक मनुष्य तीव्र क्रोध करता है तो उसके क्रोधके कारण आसपासका वातावरण भी क्षुब्ध और कुछ भयंकर हो जाता है। कोई पुरुष शान्त चित्त होकर शान्तिकी वार्ता करे और शान्तिका ही कार्य करे तो उसके निकट के वातावरणकी स्थिति ऐसी बन जाती है कि वहाँके आसपासके रहनेवाले लोग भी शान्तिका अनुभव करते हैं। यही बात तो समवशरण में हुआ करती है। प्रभु तीर्थकर जहाँ विराजे हैं उनके निकटका वातावरण ऐसा शान्त हो जाता है कि बिल्लू, चूहे, सांप नेवले, हिरण, शेर परस्पर विरोधी जातिके जानवर वहाँ एक जगह खड़े रहते हैं। यह है ना आत्मशक्ति।

आत्मशक्तिकी विजय—शस्त्रके बलपर कोई कब तक जिन्दा रहेगा? आखिर मरण उसका भी होता है और एक आत्म-आराधनामें रहने वाला संत शस्त्रोंसे रहित है। केवल एक अपने आपको ही अपना वैभव एकमात्र सहारा मानकर रहता है, उसका भी जीवन जब तक है तब तक ठीक चलता है और जितना उपकार अथवा रक्षा कोई एक शस्त्रवाला कर सकता है उससे भी कई गुना उपकार और लोगोंकी रक्षा शस्त्ररहित, किन्तु उदार सौम्य शान्त प्रकृतिका लाग लपेट लोभ लालचसे रहित प्रकृतिका मनुष्य कर सकता है। तीर्थकर तो मनुष्योंमें उत्तम हैं, उनके निकटका ऐसा शान्त वातावरण रहता है कि क्रोधकी दिशाओंमें तो परस्पर विरोधी जीव भी शान्त होकर बैठते हैं, मानकी ओर देखो तो मानस्तम्भके निकट आकर बड़े-बड़े मानी भी अपना मान त्याग देते हैं। माया, छल, कपटका तो वहाँ कुछ ख्याल नहीं रहता है। सीधा प्रभुगुण, प्रभुस्वरूपकी ही वार्ता रहती है। लोभ वहाँ क्या करे, अपना सबकुछ प्रभुके लिये समर्पण किया जा रहा है। देवी देवता मनुष्य लोग बड़े संगीत गीत साजधाजके साथ जो वहाँ भक्ति प्रदर्शन करते हैं उनके उपयोगमें उस समय यह समाया रहता है कि मेरा सर्वस्व प्रभुके चरणोंमें न्यौछावर है। मुझे किसी भी अन्य पदार्थसे कुछ प्रयोजन नहीं है। यदि उस भक्तिके समय किसी अन्य पदार्थ, पुत्र, वैभवका लगाव है तो वहाँ भक्ति भी सातिशय बन नहीं सकती। यह सब निमित्तनैमित्तिक भावोंकी बात चल रही है।

कदाचिच्छ्रे वगत्यायुर्नगिकर्मो दयादिह ।

प्रभवन्त्यंगिनः स्वर्गे पुण्यप्राग्भारसंभृताः ॥११८॥

बारह भावनाओंका वर्णन करते हुये तीसरी संसार भावनाका वर्णन करते हैं। उनमें प्रथम देवगतिका वर्णन करते हैं कि कभी तो यह जीव देवगति नाम कर्म तथा देवायुर्कर्मके उदयसे पुण्यकर्मके समूहोंसे भरे हुये स्वर्गोंमें देवोंका शरीर धारण करता है, परन्तु इन स्वर्गोंमें भी उसे किंचित् सुख प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि देवगतिमें कल्पनाओंका जाल बड़ा विस्तृत है।

लोकमहन्तोंकी व्यथार्ये—कभी यह जीव देव बनता है तो देवगतिमें भी कल्पनाजालों से बंधा हुआ यह आकुलित रहता है। जैसे यहाँ किसी बड़े करोड़पति सेठको क्या दुःख है? इसको हजारपति लोग नहीं जान सकते, उनकी दृष्टिमें तो ये बड़े सुखी नजर आते हैं, अनेक कार हैं, ठंडा मकान है, ठंडके दिनोंमें गरम मकान बन जाते हैं, अनेक नौकर-चाकर हैं, अनेक वैभव हैं, मित्रजन द्वार पर खड़े रहते हैं, बड़ी उनमें भावभक्ति होती है उस करोड़पतिके प्रति। समाजमें, सभावोंमें जहाँ भी वह करोड़पति पहुँच जाता है। वहाँ वह बड़ा आदर पाता है। हजारपति लोग सोचते हैं कि यह तो बड़ा सुखी है। पर उस के दुःखको वे भांप नहीं सकते। पर वह करोड़पति अपने आपके दुःखको कितना महसूस करता है? गरीब लोग तो बड़ी शानसे रात्रिमें सो सकते हैं, पर वह करोड़पति रात्रिमें भी ठीक तरह से सो नहीं सकता। बड़ा बेचैन रहता है। उनको अनेक चिन्ताएँ सताती रहती हैं और बड़ोंकी बातें देखो सभीमें यही बात पायी जाती है, यही पोल पायी जाती है। हम नहीं समझ पाते हैं कि उन

बड़ोंको क्या कष्ट है? ऐसे ही देवगतिके सुखोंकी बात सुन-सुनकर साधारणतया लोग यह निर्णय कर लेते हैं कि सुख है तो वहाँ है। उन देवोंपर क्या बीती है वे परस्परमें किस प्रकारकी एक-दूसरेसे ईर्ष्या द्वेष रखा करते हैं, इस बातको तो वे ही समझ सकते हैं। किन्तु एक युक्ति है, कसौटीसे इसका निर्णय तो हम आप भी कर सकते हैं कि चूँकि वे अपने स्वरूपकी ओर नहीं झुकते, बाहरी भोगोंकी ओर उपयोग दिये रहते हैं इस कारण वे नितान्त दुःखी हैं। ऐसा देव बन जाय कदाचित् देवगति देव आयुकर्मके उदयसे, तो बन जाय किन्तु होता क्या है? चिरकाल तक अर्थात् असंख्यातवर्षों तक वे दिव्य सुखको भोगकर आखिर इस भूमि पर ही उन्हें जन्म लेना होता है। वहाँ वे किस प्रकार रहते हैं? इसे सुनिये।

**कल्पेषु च विमानेषु निकायेष्वितरेषु च।
निर्विशन्ति सुखं दिव्यमासाद्य त्रिदिवश्रियम् ॥११॥**

दिव्य सुखोंसे भी जीवोंकी अरक्षा वहाँ देवगतिमें कल्पवासियोंके विमानोंमें भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी इन देवोंमें अनेक दिव्य लक्ष्मी पाकर वे देवाधिदेव सुखोंको भोगते हैं, पर जिसे फांसी लगनेका हुक्म हुआ है वह फांसी लगनेसे पहिले हँसकर खूब भोग-भोगकर चैन माने तो उसके चैनकी क्या कीमत है? ऐसे ही मृत्यु दंडित होनेका जिस का निर्णय हो चुका है ऐसा यह प्राणी संसारके सुखोंको भोगकर सुख माने, चैन माने तो उसकी क्या कीमत है? यह संसार सर्वत्र दुःखोंसे भरा हुआ है। जो दुःख है संसारी जीवोंकी कल्पनामें माना हुआ वह तो दुःख ही है, किन्तु जिसे ये संसारीजन सुख मानते हैं वह सुख भी वास्तवमें दुःख है। कितनी बड़ी विपदा है? किसी दूसरे जीवसे किसी दूसरे पदार्थसे इस विभक्त आत्माका रंच भी सम्बन्ध नहीं है लेकिन यह अपनी ओरसे ही अकेला उन पदार्थोंसे अपनेको समृद्धिशाली समझता है, सम्बन्ध मानता है, कल्पनाएँ उठाता है। ये कल्पनायें ही एक बहुत बड़ी विपदा हैं। इस जीव पर विपदा अन्तरव्यक्त अनन्त विपदाओंका कारण बन जाती है। यों ज्ञानीपुरुष संसारके स्वरूपका चिन्तन कर रहा है। यह संसार अहित करनेवाला है और यह अत्यन्त असार है। इस संसारमें सारभूत बात कुछ नहीं है। यहाँ संभलकर रहनेकी जरूरत है। आत्माकी सुध होना ही अपनी वास्तविक संभाल है। अपने आपका यथार्थ परिचय करें और अपनेको इस असार संसारसे सावधान बनाये रहें, अपनी संभालसे ही अपनी रक्षा है।

**प्रच्यवन्ते ततः सद्यः प्रविशन्ति रसातलम्।
भ्रमन्त्यनिलवद्विश्वं पतन्ति नरकोदरे ॥१२०॥**

देवोंका भी मरकर वायुवत् भ्रमण यह जीव देवगति और देव आयुकर्मके उदयसे स्वर्गोंमें सागरों पर्यन्त दिव्य सुख भोगता है, किन्तु अन्त उसका भी आता है। आयुक्षयके समय वह उस देवगतिसे च्युत होकर उस पृथ्वीतल पर जन्म लेता है। देव मरकर देव नहीं हो सकता, अतः उसका तत्काल ऊर्ध्वलोकमें जन्म होना असम्भव है। यह देव मर कर नारकी भी नहीं बन सकता, इस कारण

इसका पृथ्वीके नीचे भी उत्पन्न होना असम्भव है। तब मरकर यह इसही पृथ्वीतल पर जन्म लेता है। वह एकेन्द्रिय भी बन जाय, अथवा पञ्चेन्द्रिय, तिर्यञ्च, मनुष्य आदि बन जाय, जन्म लेना पड़ता है उन्हें चल करके यहाँ के भूलोकमें। जिस समय वे देव मृत्युको प्राप्त होते हैं उस समय उनके संक्लेशका क्या ठिकाना? वे इस बातका बहुत दुःख मानते हैं कि हमारा कैसा दिव्य सुख है, शरीर ही हाड़-मांस अपवित्र चीजोंसे रहित है देवांगनायें भी रूपवती और दिव्य देह वाली हैं, भूख प्यासका यहाँ क्लेश नहीं, विक्रिया ऋद्धि है स्वयं जन्मतः जिसके ऐसी है कि एक शरीरके नाना शरीर बना लें, छोटे बड़े बना लें, गुप्त हो जायें, प्रकट हो जायें, ऐसे नाना प्रकारके सुख अब छूटे जा रहे हैं। अब मरकर अपवित्र देहमें जन्म लेना पड़ रहा है। यह बात सोच-सोचकर वे देवता बहुत दुःखी होते हैं, पर विधिकी गति दुर्निवार है, उन्हें वहाँसे मरण करना पड़ता है, फिर इस पृथ्वीतलपर आकर जन्म लेकर वायु की तरह यहाँ वहाँ भ्रमण करना पड़ता है, अर्थात् फिर किसी देहमें जन्म लिया, यों जन्म जन्मान्तरोंके भटकनोंके बाद कभी वे नरकमें भी गिरते हैं।

भवितव्यताकी जिम्मेदारी—भैया! हमारी कैसी भवितव्यता बने इसके लिये हम ही जिम्मेदार हैं दूसरा कोई साथ देने वाला नहीं है। खुदके दिलमें पाप हो, खुद स्वयं श्रद्धान्; ज्ञान, आचरणसे भ्रष्ट हों तो यह अपने आप ही ऐसे वातावरणको बना लेगा कि दुर्गतियोंमें जन्म लेना पड़ेगा। यदि अपना आशय पवित्र है, पापसे दूर है, सम्यक्श्रद्धान्, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्आचरणका यत्न है, हम अपने परमार्थ भूत शरण इस निज अंतस्तत्त्वकी ओर झुका करते हैं तो यह सब ऐसा विशुद्ध वातावरण करेगा कि उत्तम गतिमें जन्म होगा।

समागमोंकी अविश्वीस्यता व अहितरूपता—यह संसार असार है। इन समागमोंका कोई विश्वास न करें। ये समागम जितने काल हैं उतने काल भी इन समागमोंमें कौनसा लाभ हो जायेगा? शान्ति हो जायेगी क्या? संतोष मिल जायेगा क्या? जब शान्ति और संतोष ही नहीं मिल पाते हैं तो फिर लाभकी क्या कथनी करें? विश्वासके योग्य अपने आपका सहजस्वरूप है वह कभी हमसे दूर होता नहीं। चाहे हम उसे जान पायें अथवा न जान पायें, वह शाश्वत हम ही में रहता है और अनुकूल है। उस सहजस्वरूपके कारण स्वयं कोई परिणमन होता है तो वह सहजस्वरूपका भान करता हुआ ही होता है। उसका शरण कहें, उसे सार मानें। अन्य समागमोंको असार और अहित मानें। यह जीव अपने आपकी सुध खोकर बाह्य पदार्थोंमें उलझकर, नाना कल्पनायें रचकर विविध कर्म बन्ध करता है और नाना देहोंमें जन्म लेता रहता है। इस संसारसे प्रीति मत करो।

आत्महितोपदेश—भैया! कुछ अपने भीतर एक क्षणको भी तो यह बात लावो। थोड़ी भी क्षणिक वैराग्यकी आत्मदर्शनकी बात हो जाय तो इस जीवका मंगल है, इसका कल्याण होगा यदि ऐसी ही तीव्र आसक्ति बनी है, ऐसा ही तीव्र लोभ बना हुआ है कि न वाक्योंका कोई असर होता, न किसी

धर्म क्रियामें हम सही मायनेमें चित्त्वृत्ति बना सकते तो क्या लाभ है? इस जीवनसे जीनेसे फायदा क्या मिला? विषयोंके भोग तो पशु पक्षी बनकर भी मिल सकते थे। उन पशुवोंकी इन्द्रिय विषयभोगोंसे उत्पन्न हुई मौज और इन प्राणियोंकी इन्द्रिय विषयोंसे उत्पन्न हुई मौजमें क्या अन्तर है? वे भी कल्पनावश सुखी देखे जाते हैं और यह मनुष्य भी कल्पनावश सुखी देखा जाता है इस मनुष्य देहका लाभ तो धर्मसाधनमें है। उस अपने धर्मकी सुध लो। इस मोही जगत्की देखा देखी केवल बाह्य पदार्थोंमें, परिग्रहोंमें, परिजनोंमें चित्त मत फंसाये रहो। देखो ना यह जीव देवगति तक हो आता और चलकर मनुष्य तिर्यञ्च बनकर नरक गति तक चला जाता है और चारों गतियोंमें डोलता हुआ यह जीव अपने खोटे दिन पूरे करता रहता है।

विडम्बयत्यसौ हन्त संसारः समयान्तरे ।

अधमोत्तमपर्यायैर्नियोज्य प्राणिनां गणम् ॥१२१॥

विडम्बना—अहो! बड़े आश्चर्यकी बात है कि यह संसार, यह विकारी जीवोंका समूह समयान्तरमें ऊँची नीची पर्यायोंसे जुड़ जुड़कर पिण्डरूप बना है, अर्थात् ये विकार जीवोंके स्वरूपको अनेक प्रकारोंसे बिगाड़ते हैं। जैसे यहाँ कोई कम बुद्धिका पुरुष हो तो लोग उसको सभ्य अथवा असभ्य मजाक बना बनाकर उसकी विडम्बना कर डालते हैं, ऐसे ही यहाँ इन कम अक्ल वाले जीवोंको जिनके विवेक नहीं जगा, मिथ्यात्वसे ग्रस्त हैं, शुद्ध पथका जिन्हें आभास ही नहीं है ऐसे इन अज्ञानी जीवोंको ये विकार, ये संसारभाव, ये अनेक वातावरण नानाप्रकारसे विडम्बित कर देते हैं और देखो ना अभी मनुष्य है और छिनमें बन जाता है गिजाई कीड़ा, पेड़। क्यासे क्या हालत एकदम बदल जाती है? इसे क्या कम विडम्बनाकी बात कहें? लोग कल्पनाएँ करके अपने जीवनकी काल्पनिक विपत्तियोंके मिटानेमें बड़ा जोर लगाया करते हैं और उन कल्पित विपदावोंसे बचने के लिये किसीसे लड़ना पड़े, किसीको बुरा कहना पड़े, किसीका द्वेषी बनना पड़े अथवा किसीसे जूझना पड़े तो यह जीव सब कुछ करनेको तैयार हो जाता है। यह क्या जीवपर कम विपदा है? क्या यह जीवकी कम विडम्बना है?

विडम्बनाविघातका यत्न—अरे आत्मन्! इस लोककी घटनाओंको विपदा महसूस न करके एक अपने आपके बन्धनकी विपदाको जरा सामने नजर करें, इनसे छूटना है, एक ही प्रोग्राम है। कैसा तो यह आत्मा अपने स्वभावसे ज्ञानानन्दस्वरूप रहने वाला अमूर्त, किसीके छेदे छिदता नहीं, किसीके भेदे भिदता नहीं, पानीमें डूबता नहीं, अग्निमें जलता नहीं, वायुसे उड़ता नहीं, किसीकी लपेटमें आता नहीं, ऐसा यह अमूर्त ज्ञानानन्दघन आत्मा अपने ही अपराधके कारण कैसी विडम्बनामें पड़ गया है? बड़े आश्चर्यकी बात है। हो गई विडम्बना बहुत अधिक। हे आत्मन्! तेरेमें एक ऐसी कला है जिस शुद्ध कलाके प्रयोगमात्रसे ये सर्व प्रकारकी विपत्तियाँ विडम्बनाएँ समाप्त हो जाती हैं। इस कारण अपने स्वरूपको संभालो और जगत्की इन विडम्बनाओंसे परे हो जावो।

स्वर्गी पतति साक्रन्दं श्वा स्वर्गमधिरोहति।

श्रोत्रियः सारमेयः स्यात् कृमिर्वाश्वपचोपि वा ॥१२२॥

संसारकी विचित्रता—संसारकी विडम्बनायें देखिये, देव तो बड़े रुदन सहित स्वर्गसे पत्ति हो जाते हैं, मरण करके इस भूलोकमें तिर्यञ्च अथवा मनुष्य बनते हैं और कहीं कुत्ता स्वर्गमें चढ़ जाये, देव बन जाये, ऐसी घटना हुई है। जब सत्यंधर कुमारके पुत्र जीवन्धरकुमारने एक किसी विधिविधानमें अज्ञानियों द्वारा सताये गये मरते हुए कुत्तेको नमस्कार मंत्र सुनाया था, उस नमस्कार मंत्रके शब्द श्रवणसे जो उसकी विशुद्धि प्रकट हुई उसके प्रतापसे कुत्ता भी देव हो गया।

णमोकार मंत्रके मंत्रणकी पद्धति—भैया! णमोकार मंत्रका प्रताप अद्भुत है, किन्तु श्रद्धा न होने पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं बनता। अरहंतका क्या स्वरूप है? उस स्वरूपको दृष्टिमें रखकर यह सत्य शरणभूत है, ऐसा जानकर उसके निकट बसनेका उद्यम हुआ णमो अरिहंताणं' बोले और निर्वाध यथार्थ ब्रह्मस्वरूपको निरखकर यही तो मैं हूँ; ऐसा अपना मतके साथ सिद्धप्रभुकी शरणमें जाते हुए 'णमोसिद्धाणं' बोले। अपने उपकारक आचार्य परमेष्ठी जो आदेशों द्वारा उपदेशों द्वारा और उन विधि विधानों द्वारा इन साधुवोंका उपकार करते हैं ऐसे उपकारक आचार्य परमेष्ठियोंकी आन्तरिक स्वच्छता, सरलताके निकट अपने उपयोगकी पहुँच हो, यहाँ 'णमो आइरियाणं' बोलें और ज्ञानपुञ्ज, ज्ञानकी चर्चाका ही जिनके कार्य है, पठनपाठन ही जिनका एक मुख्य गुण हो गया है और जो समस्त पंचाचारोंका विधिवत् पालन करते हैं ऐसे ज्ञानपुंज उपाध्याय परमेष्ठियोंके उस ज्ञानाविकासको निरख-निरखकर प्रसन्न होते हुए 'णमो उवज्जायाणं' बोलें और नाना गुफावोंमें, वनोंमें, पर्वतों पर, सागर तट पर, नदीके तट पर विभिन्न परिस्थितियोंमें, उपद्रवोंमें, अपने ध्यानमें लीन रहने वाले साधुवोंकी आन्तरिक रुचिको निरखकर 'णमो लोएसव्यसाहूणं' बोलें। ऐसी भक्तिभावसे णमोकारमंत्रका स्मरण करनेवाले पुरुष पर जो प्रभाव हो सकता है, वह प्रताप अद्भुत है।

चेतनेका अवसरका सुयोग—देखो कुत्तेने भी णमोकारमंत्रके शब्दके श्रवणमात्रसे प्राप्त की हुई विशुद्धिसे देवपद प्राप्त किया और बड़े यज्ञ पूजा विधान करने वाले पुरुष एक श्रद्धाके बिना कहो मरकर कुत्ता बन जायें, कीड़ा बन जायें अथवा चांडाल आदिक बन जायें, ये सब संभावनायें सही हैं, देखो इसी प्रकार संसारकी ये सब कैसी विडम्बनाएँ हैं, ऐसी विडम्बनामय संसारमें स्वच्छन्द होकर, बेखबर होकर मत भागे भागे फिरो। इस विषम उपद्रवोंसे ग्रस्त विश्वासके अयोग्य संसारमें स्वच्छन्द होकर रमनेका काम नहीं है। अपनी संभाल कर ली जायेगी तो भविष्य भी उत्तम बनेगा और अपनी संभाल न होगी तो जैसे अनादिसे अब तक भ्रमते चले आये हैं वही भ्रमण जारी रहेगा। चेतनेका अभी मौका है। जातिकुल भी उत्तम मिला है, ऐसे अनुपम समागमको पाकर अपना जीवन सफल करनेका यह अवसर है। ऐसे अवसरसे चूके तो फिर यह अवसर हाथ आनेका नहीं है। बड़ी कठिनतासे पुनः कभी सुयोग प्राप्त होगा।

रूपाण्येकानि ग्रहणाति त्यजत्यन्यानि संतम् ।

यथा रङ्गोऽद्र शैलूषस्तथाय यन्त्रवाहकः ॥१२३॥

देहधारियोंके नाना रूपक—यह यंत्रवाहक अर्थात् इस शरीर मशीनको ढोनेवाला यह मजदूर पुरुष कभी रूपको ग्रहण करता है और कभी किसी रूपको त्यागता है। रूप बनाना, रूप मिटाना बस यही नाटक जैसा काम इस जीवका बन रहा है; जैसे कोई रंग मंचपर नृत्य करने, पार्ट अदा करनेवाला भिन्न-भिन्न स्वांगोंको धरता है, इसी प्रकार यह जीव निरंतर भिन्न-भिन्न स्वांगोंको धारण करता रहता है। कभी कुछ बना, कभी कुछ बना। जीवोंके पापके उदय आते हैं और उन्हें ऐसे ही पुण्योदयी निमित्त मिलते हैं किन्तु क्रूर मनुष्योंसे पाला पड़ जाता है कुछ पुण्यके उदयसे, कुछ यश चला है, प्रताप बना हुआ है तो वे बड़े लोग तो अपनी मौजके लिये, इस जगत्में अपनी नामवरी फैलानेके लिये युद्ध करें, कैसी-कैसी प्रवृत्तियां करें और ये अनेक संसारी जीव उसमें पिस जाया करते हैं। यह सब संसारका रूपक है। संसारमें किस जगह जायें कि संतोषसे बैठा जा सके? जब इस जीवके साथ कषायोंका दाह लगा हुआ है तो जहाँ जायेगा वहीं जलेगा। शान्ति कहाँ पायेगा? शान्ति चाहते हो तो इस अपने आपके अन्तरमें ही सम्यग्ज्ञानका प्रकाश पाये तो शान्ति मिलेगी। यथार्थ बोध बिना यह जीव शान्ति तो पायेगा क्या? अनेक विडम्बनाओंके रूपोंको ग्रहण करता है, छोड़ता है, जन्मता है, मरता है।

तीन मांगोंसे निरुत्तरता—किसी राजाने दूसरे राज्यपर हमला बोला और उस दूसरे राज्यके सब वंशजोंको मार डाला, तब इसे बड़ा खेद हुआ, हाय! मैंने कुबुद्धिवश इस राजवंशको उजाड़ डाला, क्या फायदा मिला? इस सोच विचारके बाद वह इस तलाशमें रहा कि इसके घरानेका कोई मिले तो उसको ही यह राज्य सौंप दूँ। हमें क्या करना है इस राज्यको? खोजा तो कोई न मिला। एक पुरुषने बताया कि इस राजवंशका राजा का एक चाचा मरघटमें रहता है। वह घर आता भी नहीं है। वही उसे मौज मिलता है। वह राजा मरघटमें उसके पास पहुँचा। सारी कथा सुनाई और कहा कि तुम जो चाहते हो हमसे मांग लो। राजा तो सोचता था कि यह तो अधिकसे अधिक राज्य मांग लेगा और क्या मांग सकेगा? तो वह चाचा बोला हम जो चाहेंगे क्या तुम वह दोगे? राजा बोला हाँ देंगे। तो चाचा कहता है अच्छा मुझे ऐसा सुख दो जिसके बाद फिर कभी दुःख न आये। राजा ऐसे अटपट प्रश्नको सुनकर गम्भीर विचारमें पड़ गया और उसे ऐसा लगा कि इस संसारमें ऐसा कोई भी वैषयिक सुख नहीं है जिसके पानेके बाद फिर कभी दुःख न आये। वह हाथ जोड़कर बोला महाराज मैं ऐसा सुख देनेमें असमर्थ हूँ। कृपया आप कोई दूसरी चीज मांगो। चाचा बोला अच्छा देखो तुम हमें ऐसा जन्म दो कि जिसके बाद फिर कभी मरण न हो। राजा इस दूसरी बातको भी सुनकर विस्मय में पड़ा। सोचता है राजा कि ऐसा किसका जीवन है कि जिस जीवनको पाकर वह कभी मरता न हो। बड़ी-बड़ी स्थितियोंके देवता लोग भी आखिर मरा करते हैं, सो ऐसा सोच कर राजा कहता है महाराज इस बातको भी देनेमें असमर्थ हूँ। आप कोई तीसरी चीज मांगो। तो चाचा बोला कि मुझको ऐसी जवानी

हो जिसके बाद फिर कभी बुढ़ापा न आये। ऐसा तो कहीं देखा ही न होगा किसीने कि जवानी आनेके बाद बुढ़ापा आता ही न हो, सदा जवान ही बना रहता हो ऐसा तो कहीं होता नहीं। ऐसी बात सोचकर राजा हाथ जोड़कर कहता है महाराज तुम्हारी इस मांगको भी मैं पूरा करनेमें असमर्थ हूँ। आखिर अपनी हार मानकर राजा वापिस चला जाता है।

सुखकेलिये अविवेकी होनेकी मूर्खता भैया! खूब देख लीजिये कि इस संसारमें ऐसा कोई भी सुख ऐसा नहीं है जिस सुखमें अनन्त दुःख न बसे हुए हों। फिर इन सांसारिक सुखोंकी आशा करना और उनके लिये विवाद विरोध और विकल्प मचाना, यह तो कुछ विवेककी बात नहीं है। सुखके लिये अविवेकसे लिपटना तो मूर्खताका काम है। विवेकका काम तो है अपने सत्यस्वरूपकी दृष्टि करना और उस निजतत्त्वके दर्शनमें ही प्रसन्न बने रहना, यही है विवेकका काम। इस विवेकपूर्ण कार्यसे हम अवश्य शान्त होंगे व पूर्ण सन्तुष्ट होंगे।

सुतीव्रासातासंतप्ताः मिथ्यात्वातङ्कितक्रिताः।

पञ्चधा परिवर्तन्ते प्राणिनो जन्मदुर्गमे ॥१२४॥

अज्ञानी प्राणियोंका जन्मवनमें भ्रमण अत्यन्त तीव्र असातासे संतप्त हुए और मिथ्यात्वरूपी रोगसे शंकित हुए यहाँ प्राणी ५ प्रकारसे इस जन्मरूपी दुर्गम वनमें भ्रमण कर रहे हैं। इस संसारको दुर्गम वन कहा है, जो कि नाना प्रकारके पेड़ कंटीले अनेक वृक्ष और लतावोंसे वेष्टित है। जहाँ इन वृक्षोंके फैलावके कारण अंधरासा छाया रहता है, ऐसे वनमें प्रवेश करना कठिन है, उस वनसे निकलना कठिन है। ऐसे ही इस संसारमें जहाँ विषमकषायकी वासनाओंके कारण अंधेरा छाया रहता है, ऐसे इस अज्ञानी जगत्से निकलना कठिन है, इसीसे संसारको वनकी उपमा दी गई है। इस संसाररूपी दुर्गम वनमें यह प्राणी मित्यात्वसे संतप्त व शंकित हुआ यत्र तत्र भ्रमण करता है। जैसे दुर्गम वनमें फंसा हुआ मनुष्य जहाँ सूर्यका प्रकाश भी नहीं आ पाता तो थोड़ा पूर्व दिशाकी ओर भागता है, फिर शंकित हो जाता है। फिर कहीं उत्तर और दक्षिणकी ओर भागता है। ऐसे ही ये संसारके प्राणी मिथ्यात्वके वशीभूत होकर नाना योनियोंमें भ्रमण कर रहे हैं और इसी कारण उन्हें तीव्र असाताका संताप उत्पन्न होता है। जब ज्ञान सही नहीं रहता, विपरीत ज्ञान बन जाता है तो वहाँ असाता ही उत्पन्न होती है। यों असातासे तप्तायमान् हुआ मोहके वशीभूत यह प्राणी इस संसाररूपी दुर्गम वनमें परिवर्तन करता रहता है।

द्रव्यक्षेत्रे तथा कालभवभावविकल्पतः।

संसारो दुःखसंकीर्णः पञ्चधेति प्रपञ्चितः ॥१२५॥

संसारी प्राणियोंका द्रव्यपरिवर्तन संसारके परिवर्तन ५ प्रकारके होते हैं द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन, कालपरिवर्तन, भवपरिवर्तन और भावपरिवर्तन। इन परिवर्तनोंके स्वरूपको बतानेका प्रयोजन इतना है कि इस जीवको यह ज्ञात हो जाये कि मैंने संसारमें भ्रमण करते करते कैसे

अनन्तकाल व्यतीत किया है? द्रव्यपरिवर्तनमें यह बताया है कि इस एक परिवर्तनमें ही शरीरकी अनेक वर्गणाएँ भोग उपभोगकी समस्त सामग्री अनन्त बार ग्रहणकी है और छोड़ दी है उसका वर्णन ग्रहीन अग्रहीत मिश्रके माध्यमसे बताया गया है, वह सर्वजनोंको क्लिष्ट रहेगा। उससे इतना ही तात्पर्य ग्रहण करना कि इस जीवने अनन्त बार इस शरीरकी वर्गणावोंको भोगा और उपभोगके विषयोंको ग्रहण किया और छोड़ दिया। वैसे भी देख लो तो किसी भी विषयके साधनमें सुख काहे का है? कल्पनाएँ करके कुछ मान लिया जाय तो वह सत्य सुख तो नहीं कहा जायेगा। भोगोंमें सुख नहीं है। इस बातका परिचय आप इस पद्धतिका ज्ञान करें तो हो जायेगा। जो भोग भोगे हैं अनेक बार और अनेक दिन व्यतीत किए हैं। यदि ये भोग न भोगे जाते, न भोगते तो कौनसी हानि इस जीवको आज थी? इस पद्धतिको विचार करके भोगोंकी असारता सुविदित हो जाती है।

संसारी प्राणियोंका क्षेत्रपरिवर्तन व लोकके मध्यका वर्णन—क्षेत्रपरिवर्तनमें यह दिखाया गया है कि यह जीव ३४३ घनराजू प्रमाण लोकमें लोके बीचसे क्रम क्रमसे एक एक प्रदेश बढ़ बढ़कर कितने ही बार पैदा हुआ है। यों लोकके प्रत्येक प्रदेशपर अनेक बार उत्पन्न हुआ है, इतना काल व्यतीत किया है। इस लोकका मध्यस्थान है मेरुपर्वतके जड़के नीचेके ८ प्रदेश। इस लोकमें प्रदेश असंख्याते हैं। असंख्याते होकर भी चाहे वे गिनती में न आयें लेकिन उनमें यह व्यवस्था तो जरूर होगी कि वे प्रदेश इतने हैं कि दो का भाग तो पूरा चला जाय या एक बच जाय। कितने ही अनगिनते प्रदेश हों फिर भी यह व्यवस्था तो सम्भावित है। जैसे हजार प्रदेश हैं, दो का भाग दो तो पूरा भाग चला जाता है। १००१ प्रदेश हों तो दो से भाग देने पर एक बच जाता है। तो लोकमें प्रदेश तो असंख्याते हैं, पर यह संभावना है कि दो का भाग दें तो पूरा भाग चला जाय इतने प्रदेश हैं या एक बच जाय। इस व्यवस्थासे लोकमें ऊने हैं प्रदेश या पूरे? पूरे हैं प्रदेश। चारों ओर पूरे प्रदेश हैं।

उदाहरणपूर्वक लोकके मध्यका प्रतिपादन—कोई चीज इतनी लम्बी इतनी चौड़ी उतनी मोटी हो सब जगह, मानलो कि वह १२ अंगुलकी है चारों ओर १२ अंगुल लम्बा, १२ अंगुल चौड़ा, १२ अंगुल मोटा तो कोई काठ है तो बतलावो अंगुलकी नापसे उसके बीच कौनसा अंगुल पड़ेगा? ११ अंगुल होता तो कह देते कि छठवां अंगुल है बीच। अब १२ अंगुलमें बीचका अंगुल क्या बतायें? प्रकृतमें यूनिट एक अंगुलको मान लो सो अंगुलसे कम ज्यादा बताना है नहीं। तो लम्बाईमें बीचकी दो अंगुल आयेगी, चौड़ाईमें बीचकी दो अंगुल आयेगी। चारों दिशाओंसे ऊपर नीचे से दो-दो अंगुल आयेगा, तब बीच कितना पड़ा? आठ अंगुल। ऐसे ही यह लोक समसंख्याके प्रदेश वाला है। उन अनगिनते प्रदेशों में दो का भाग पूरा चला जाता है तो ऐसे इस बड़े लोकमें बीचका स्थान कितना पड़ेगा? आठ प्रदेश। ऊपरसे नापा तो चारों दिशावोंके चार प्रदेश रहे। नीचेसे नापा तो नीचेसे चार प्रदेश रहे। यों लोकके ठीक मध्यभाग ८ प्रदेश हैं।

क्षेत्रपरिवर्तनका रूप—लोकके मध्यमें यह जीव छोटी अवगाहनासे पैदा हो और ऐसी जगह कि जीवके अथवा शरीरके बीचमें ८ प्रदेश और लोकके बीचमें ८ प्रदेश, आठ पर आठ रह जायें ऐसी जगह यह जीव पैदा हुआ, फिर उसके बाद किसी एक दिशामें एक प्रदेश बढ़कर वहाँ पैदा हुआ, फिर दुनियामें कहीं भी पैदा हो वह गिनतीमें नहीं आता। फिर उसके ही बाद में फिर पैदा हो, इस तरह क्रम-क्रमसे एक-एक प्रदेशपर पैदा हो-होकर सारे लोक प्रदेशोंमें यह जीव उत्पन्न हो जाय इतनेमें जितना समय व्यतीत हो उसका नाम है एक क्षेत्रपरिवर्तन। ऐसे-ऐसे इस जीवने अनन्त क्षेत्रपरिवर्तन किये हैं। इन परिवर्तनोंका एक मोटा स्वरूप बता रहे हैं।

संसारी प्राणियोंका कालपरिवर्तन—कालपरिवर्तनमें मान लो कभी जब कल्पकाल शुरू हुआ, अवसर्पिणीके पहिले समयमें यह जीव उत्पन्न हुआ, फिर कभी उत्सर्पिणी काल आया और उसके दूसरे समयमें जन्म ले ले तो यह क्रममें शामिल होगा, नहीं तो यों अनन्त उत्सर्पिणी व्यतीत हो जाय उनके अन्य-अन्य समयोंमें पैदा हो तो हमारे इस परिवर्तनके क्रममें न आयेंगे। यों फिर उत्सर्पिणी हुआ, उसके तीसरे समयमें उत्पन्न हुआ। यों एक-एक समय बढ़कर सारी उत्सर्पिणी और सारी अवसर्पिणीमें उत्पन्न हो जाय, उसमें जितना समय लगे वह है एक कालपरिवर्तन। बहुत संक्षिप्त और मोटा स्वरूप बता रहे हैं कि इस जीवने संसारमें कितने परिवर्तन कर डाले।

संसारी प्राणियोंका भवपरिवर्तन—अब सुनिये भव परिवर्तन। जैसे मान लो नरक भवका परिवर्तन बताना है तो नारकी जीव कमसे कम १० हजार वर्षकी उमरका होता है। इससे कम उमर नारकी जीवकी नहीं होती और ज्यादासे ज्यादा ३३ सागरकी उमर होती है। कोई जीव १० हजार वर्ष की आयु लेकर नारकी बने और फिर वहाँसे मरण करके फिर १० हजार वर्षकी आयु लेकर नारकी बनें, यों १० हजार वर्ष में जितने समय होते हैं उतने बार दस-दस हजार वर्षकी आयु लेकर उत्पन्न हो, बीचमें कहीं भी उत्पन्न हो और नारकी की भिन्न-भिन्न आयु लेकर उत्पन्न हो वह इस गिनतीमें नहीं है। जब १० हजार वर्षके समय बराबर बार १० हजार वर्षकी आयु लेकर नरक भव धारण कर लिया, फिर एक समय अधिक दस हजार वर्ष की आयु लेकर उत्पन्न हुआ, फिर दो तीन आदि समय अधिक दस-दस हजार वर्ष की आयु लेकर उत्पन्न होता रहे, यों एक-एक समय बढ़ाकर ३३ सागरकी आयु-पर्यन्त नरकमें उत्पन्न हो ले, इसमें जितना समय लगे उतने समयका नाम है एक नरकभव परिवर्तन ऐसी ही बात चारों गतियोंमें ले लो। अन्तर इतना रहेगा कि देवगति में १० हजार वर्षसे लेकर ३१ सागरकी आयु तक ही लगाना, क्योंकि ३१ सागरसे १ समय भी अधिक आयु सम्यग्दृष्टि ही पायेगा। उसका परिवर्तन होता नहीं। मनुष्यभवमें अन्तर्मुहूर्तसे लेकर तीन पत्यकी आयु तक परिवर्तन लेना। ऐसी ही बात तिर्यञ्चोंमें लेना। यह है भवपरिवर्तन।

भावपरिवर्तन व उपसंहार—भावपरिवर्तन तो अतिविषम है। कितने-कितने कषाय के क्रमवार अध्यवसाय स्थान व्यतीत हो जायें तब एक योगस्थान गुजरे, यों क्रमसे सब योगस्थान गुजरे, वहाँ

सबसे बड़ा भारी काल व्यतीत होता है। यों ५ प्रकारके परिवर्तनों से यह जीव संसारमें जन्ममरण कर रहा है। क्या किया इसने सर्वपरिवर्तनोंमें, क्या बीती इस पर, सो आगे श्लोकमें सुनिये

सर्वेः सर्वेऽपि सम्बन्धाः संप्राप्ता देहधारिभिः।

अनादिकालसंभ्रान्तैस्त्रसस्थावरयोनिषु ॥१२६॥

अनादिकालसे भ्रमण करनेवालोंका परस्पर सबसे सम्बन्धकी घटनायें—इस संसारमें अनादि कालसे भ्रमण करते हुए जीवों ने सभी जीवोंके साथ सभी प्रकारके सम्बन्ध पाये हैं। आज जिन्हें आप गैर मानते हैं, जो दूसरे घरके हैं, दूसरे देशके हैं वे सभी जीव आपके अनेक बार कुटुंबी बन चुके हैं। ऐसा कोई भी जीव अथवा ऐसा कोई भी समय बाकी नहीं रहा जो इस जीवने न पाया हो। आज जिसका यह पिता कहलाता है कभी उसका यह पुत्र भी था, पर नाना भवोंकी बात तो जाने दो, ऐसा भी सम्भव हो सकता है कि इस ही भवका जो पुत्र है इस पिता के मरने के बाद यह पिता उस ही पुत्रका पुत्र बन जाय। ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं बचा जो सम्बन्ध सब जीवोंके साथ न जुड़ा हुआ हो। जब अनन्तकाल, अनन्तभव इस जीवने धारण किये तो किसी न किसी रूपमें प्रत्येक जीवसे इसका सम्बन्ध हुआ है। आज यह मोहवश अज्ञानवश ऐसा भाव कर रहा है कि ये लोग मेरे हैं, ये लोग गैर हैं। क्या क्या हुआ उन परिवर्तनोंमें सो भी सुनिये

देवलोके नृलोके च तिरश्चि नरकेपि च।

न सा योनिर्न तद्रूपं न तद्देशो न तत्कुलम् ॥१२७॥

न तद्दुःखं सुखं किञ्चिन्न पर्यायः सविद्यते।

यत्रैते प्राणिनः शश्वद् यातायातैर्न खण्डिताः ॥१२८॥

देवलोकमें अनेक जन्म—देवलोकमें, मनुष्यलोकमें, तिर्यञ्चमें और नारकोंमें ऐसी योनि नहीं बची, वह रूप, देश, कुल, दुःख, सुख आदिक कोई ऐसे परिणमन नहीं बचे जिन परिणमनोंको इस प्राणी ने संसारमें जन्म मरण करते हुए न पाये हों। देवलोकसे प्रयोजन व्यवहारकी अपेक्षा तो ऊर्ध्वलोकसे है और देव जहाँ जहाँ रहते हैं उस अपेक्षा से भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक चारों प्रकारके देवोंको देवलोकमें उत्पन्न होनेका साधन उपपाद है। माता पितासे देव उत्पन्न नहीं होते, किन्तु विशिष्ट स्थानों पर शैया बनी है और वहाँ देव स्वयं ही अपने आप वहाँ की वैक्रियक वर्गणाओंको ग्रहण करके बालककी तरह लेटे हुये प्रकट हो जाते हैं और फिर वे देव अन्तर्मुहूर्तमें ही जवान हो जाते हैं।

प्रभुभक्त दर्दुरका देवलोकमें उत्पाद—भगवान् महावीर स्वामीके समवशरणमें राजा श्रेणिक जा रहा था हाथी पर चढ़ा हुआ और समवशरणमें प्रभुदर्शनके लिये प्रभुभक्तिसे एक मेंढक भी अपने मुखमें कमलकी एक पाँखुरी दबाये हुये जा रहा था। रास्तेमें वह मेंढक राजा श्रेणिकके हाथीके पैरोंके नीचे आकर दबकर मर गया। प्रभु पूजाकी परिणतिके प्रसादसे मरकर वह देव हुआ और अन्तर्मुहूर्तमें ही

जवान होकर अवधि ज्ञानसे अपना पूर्वभव और प्रभुभक्तिभावकी महिमा जानकर भगवान महावीर स्वामीके समवशरणकी भावनाका ध्यान करके अपने मुकुटमें मेंढकका चिह्न बनाकर समवशरणमें पहुँच गया राजा श्रेणिकसे भी पहले। वहाँ जब एक अद्भुत रूपधारी तेजस्वी देवको देखा और देखा कि इसके मुकुटमें मेंढकका भी चिह्न है, मेंढक कोई बढ़िया जीव तो नहीं है। मुकुटमें तो मेंढककी फोटो यदि बनायी जाय तो वह तो भदी लगेगी। जैसे पुरानी चालकी स्त्री अपने शिर पर एक मेंढकसा रख लेती हैं, उस मेंढकसे फायदा तो था कि शिरके ऊपरकी जो साड़ी है वह चिकनी न होती होगी, पर लगता बड़ा भद्दासा, उठा हुआ सा है। कोई मुकुटमें मेंढकका चिह्न बनाले तो वह बढ़िया तो नहीं लगता। उस चिह्नको देख कर श्रेणिकके यह जिज्ञासा हुई कि यह कौन है और ऐसा चिह्न क्यों बनाया है? तो वहाँ समाधान मिला कि तेरे ही हाथीके पैरके नीचे दबकर मरकर यह देव बना है और तुमसे पहिले प्रभुदर्शनके लिये समवशरणमें आ गया है। तो देवलोकमें उपपाद शैया होती है वहाँ जन्म होता है।

नृलोक, तिर्यग्लोक व नरलोकमें अनेक जन्म—मनुष्यलोकमें जन्मस्थान मनुष्योंकी तरह है, तिर्यज्चोंमें तिर्यज्चोंके योग्य है, किन्तु नरकगतिमें नारकियोंके उत्पन्न होनेके स्थान ऐसे हैं जैसे छतके नीचे कोई आकार बने हुये हों ऊटपटाँग तिरछे, यों इस पृथ्वीमें पोलके भीतरी भागमें ऊपर अनेक तरहके बहुत आकारके स्थान बने हैं, वे हैं नारकियोंके जन्म लेनेके स्थान। वहाँसे नारकी औंधे शिर टपकते हैं और जमीन पर सैकड़ों बार उछलते हैं। जैसे गेंद किसी जगह गिरने पर सैकड़ों बार उछलती है ऐसे ही नारकियोंका जन्म होता है।

जन्म, सुख, दुःख आदिकी अनन्तानन्त घटनायें—इन योनियोंमें कोई योनि ऐसी नहीं बची जो इस जीवने अनेक बार न पायी हो। न ऐसा रूप, न ऐसा देश, न ऐसा कुल, न ऐसा दुःख सुख, न अन्य प्रकारका किसी भी प्रकारका विभावपरिणमन कोई नहीं बचा, जिसको इस जीवने अनेक बार पाया न हो। सभी अवस्थाओंमें इस जीवने अनेक बार सुख दुःख भोगे हैं बिना भोगे कुछ भी नहीं बचा। तब किसी भी पदार्थको निरखकर हे आत्मन्! तू अपूर्व क्यों मानता है, नवीन क्यों मानता है? जो भी तेरे उपभोगमें आ रहे हैं वे सब अनेक बार भोगकर छोड़े हैं। ये तो सब तेरे जूठे हैं। तू इन जूठे विषय भोगोंमें इतनी प्रीति करता है कि जिस आसक्तिके कारण तू अपने आनन्दधाम निजस्वरूप को भी भूल गया है। परिवर्तनरहित शुद्ध ज्ञानस्वरूपकी भावना करें तो संसारके ये सारे परिवर्तन समाप्त हो सकते हैं और अपने आपको ज्ञानस्वरूपमें लीन करके सदाके लिये संकटोंसे छूट सकते हैं। इन संसारसमागमोंको असार जानकर इनसे प्रीति मत करो और अपने शाश्वत स्वरूपमें ही अनुराग करो।

न के बन्धुत्वमायाता न के जातास्तव द्विषः।

दुरन्तागाधसंसारपङ्कमग्नस्य निर्दयम् ॥१२९॥

बन्धुता और शत्रुताका भ्रम—इस दुरन्त अगाध संसाररूपी कीचड़में फंसे हुए जीवों में से ऐसा कौनसा जीव है जो मित्र व शत्रु न हुआ हो? व्यतीत हुआ काल अनन्त हो चुका है। जिसमें अनन्त

परिवर्तन समा जाते हैं। इस अनन्त कालमें अनन्त बार जन्म लेने वाले इन प्राणियोंके ऐसे-ऐसे जीवोंके समागम हुए हैं कि कोई कभी, कोई कभी इनके बन्धु हुए हैं, परिजन बने हैं और वे ही के वे ही सब किसी भवमें शत्रु बने हैं। मित्रता और शत्रुता की तो नाना भवोंकी क्या कहानी कहें? इस ही भवमें जो आज मित्र हैं वे अगले कभी शत्रु बन जाते हैं, और जो आज शत्रु हैं वे कारण पाकर कभी मित्र बन जाते हैं। वस्तुतः किसी जीवमें शत्रुता और मित्रताका निर्णय नहीं है। कि यह जीव किसीका शत्रु ही रहा रहे अथवा यह जीव किसीका मित्र ही रहा करे। यह सब कषायोंके मिलने और न मिलनेका खेल है। जिस पुरुषसे हमारी कषाय मिल जाती है जैसे कषाय हम रखते हैं उसही प्रकारकी कषाय दूसरेमें हो तो बस मित्र बन गए। हमारी कषाय हो और तरहकी और दूसरेकी कषाय हो और प्रकारकी, हमसे विरुद्ध तो शत्रु बन गये।

अज्ञानियोंका खेल—जरासी देरमें मित्र बन जाना, जरासी देरमें शत्रु बन जाना यह सब क्या है? बच्चों जैसा खेल है। जैसे बालक एक जगह मिलकर खेलते हैं, पर थोड़े ही समय खेल पाये कि कुछ जरासी बात ऐसी बन उठी कि आपसमें लड़ाई हो गयी, हाथापाई हो गयी। खेल छोड़कर अपने दरवाजेसे निकलकर घर पहुँच गये और थोड़ी ही देर बाद घरसे निकलकर फिर मिल-जुलकर खेलने लगे। यह क्या है? क्षणिकमें कषाय मिल गयी, क्षणिकमें कषाय न मिली और उससे यह शत्रुता और मित्रताका खेल चल रहा है। ऐसे ही संसारी प्राणियोंमें विषयसाधनोंका साधनभूत कषाय बन जाय तो वे मित्र हो जाते हैं और विषय साधनोंमें कोई बाधक बन जाय तो वे शत्रु हो जाते हैं।

अपनी संभालके कर्तव्यपर दृष्टि—भैया! अपने आपको संभालने का बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य पड़ा हुआ है। किसी दूसरेपर क्या दृष्टि देते हो? उपेक्षा करो, ज्ञाताद्रष्टा रहो। अपने आपके परिणामोंकी संभालपर अधिक दृष्टि देनी चाहिये, क्योंकि इस लोक में किसी भी जीवका कोई अन्य शरण नहीं हो सकता। खुद जैसा करेंगे वैसा भोगेंगे। अतएव अपनी करनीका सुधार होना चाहिये। पापोंकी बात हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह अथवा क्रोध, मान, माया, लोभ अथवा पञ्चेन्द्रियके विषयोंके भोग आदिकमें आसक्त न हो और अपने आपके स्वरूपके विचार सहित शुभ अथवा शुद्धपथमें वृत्ति जगे, यही है अच्छे होनहारकी बात।

प्रीति-अप्रीतिके हठके परिहारमें लाभ—जगतके जीवोंमें हम किससे प्रेम करें? जो आज इष्ट जंच रहा है वह अनेक बार विरोधी घातक प्राण लेने वाला शत्रु बना। किससे आज हम द्वेष करें? जिससे हम द्वेष करते हैं वह अनेक बार हमारा मित्र विषयसाधक बंधु परिजन बना है। जब सभी जीव कभी कोई शत्रु हुये हैं, कभी कोई बन्धु हुये हैं तो उनमें प्रीति अप्रीति करनेका एकान्त कैसे किया जाय? और फिर प्रेम और द्वेषके परिणामन विभाव है। बाह्य पदार्थोंकी ओर आकर्षण होने पर ऐसी प्रवृत्ति होती है, वह सब जीवका अहित है। इन कल्पनाओंको त्यागें और अपने स्वरूपस्मरणकी ओर आयें।

**भूपः कृमिर्भवत्यत्र कृमिश्चामरनायकः ।
शरीरी परिवर्तेत कर्मणा वञ्चितो बलात् ॥१३०॥**

देहियोंका विचित्र परिवर्तन—इस संसारमें यह प्राणी कर्मोंसे बलात् ठगा गया है। राजा तो मरकर कीड़ा बन जाता है और कीड़ा मरकर देव बन जाता है। ऐसी नीची गतिसे उच्च और उच्चगतिसे नीच गति पलटती रहती है। संसार नाम परिभ्रमणका है, परिवर्तनका है। यही तो एक दुःख है। उच्च गति प्राप्त की, उच्च स्थिति प्राप्त की और उसके बाद नीची गति मिली। इसमें क्या होता है? नीची स्थिति मिले तब बड़ा क्लेश मानता है यह। अथवा इसे क्या पता कि पहिले मैं क्या था, अब क्या हूँ, किन्तु जो भी स्थिति मिलती है उसही में अनेक कल्पनाएँ बना लेता है।

संतोषकी रेखाका अदर्शन—अहो, कहाँ संतोष करे यह जीव? कौनसी रेखा संतोषकी है कि जहाँ यह जीव टिक जाय? धनकी दिशामें संतोषकी रेखा कहीं नहीं मिलती। लौकिक विद्यावोंकी दिशामें संतोषकी रेखा कहीं नहीं मिलती, ऐसे ही धर्मकी समाजकी दिशामें संतोष की रेखा कहीं नहीं मिलती। कितना धन हो जाय तो संतोष हो सकता है, इसका कोई परिमाण नहीं है? ऐसे ही लौकिक ज्ञान कल्याणभावनासे रहित पुरुषका ज्ञान कितना बन जाय कि वहाँ संतोष हो इसकी भी रेखा कहीं नहीं है। आविष्कारों पर आविष्कार बनते जाते हैं, आगे जिज्ञासा बढ़ती है, अपने विकल्प और लम्बे करते जाते हैं। लोकमें यश और नामकी दिशाओंमें भी कोई रेखा ऐसी नहीं कि जहाँ यह जीव संतोष कर सके। कभी कोई गाँवका हो नेता बन गया तो यह बड़ी खुशी मानता है। देखो अबकी बार हम म्यूनिस्पल्टीके मेम्बर बन गए। पर इतनेसे वह संतोष नहीं करता। कुछ समय बाद इच्छा होती है कि मैं चेयरमैन बन जाऊँ, पर इतने से भी चैन नहीं मानता वह। फिर जिलेका, प्रान्त का, देश भरका और फिर विश्वभरका नायक बनना चाहता है।

अज्ञानका संकट—प्रत्येक सांसारिक स्थितिमें इसके संकट लगे रहते हैं, किसी भी स्थितिमें हो, जो देशका मालिक है उसके संकट उसकी तरहके हैं, जो गाँवका नायक है उसके संकट उसकी तरहके हैं। संकट सब पर लदे हैं और उसका कारण बाह्य परिस्थिति नहीं है कि इसपर देशभरका बोझ है इस कारण संकट हैं, इस इस तरहका संचय है या जमींदारी है इस कारण संकट है, यह बात नहीं है। सब संकटोंका मूल अज्ञानभाव है। आत्माका स्पर्श न हो सके, आत्माकी अनुभूति न जगे, सबसे निराला सूक्ष्म, अछेद्य, अभेद्य, किसीकी पकड़में न आने वाला, किसीके साथ किसीका नाता नहीं, सम्बन्ध नहीं, ऐसे निज सहजस्वरूपकी दृष्टि नहीं जगी इसी कारण यह अपने पंख बहुत फैलाना चाहता है। यही सब क्लेशोंकी जड़ है।

संसारकी अनभिलष्यता—भैया! इस संसारमें क्या चाहते हो? जब यह स्थिति बन रही है कि राजा तो मरकर कीड़ा बन जाय और छोटे-छोटे तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय मर कर देव बन जायें। जब यह स्थिति है तो यहाँ किस बातमें रमा जाय? यहाँ कोई रमने का स्थान नहीं है। अपने आपके

अन्तःस्वरूपका उपयोग द्वारा सिंचन बना रहे तो इसमें वह बल बनता जायेगा कि जिससे संकटोंके सहनेकी शक्ति रहे और यथार्थ ज्ञाता द्रष्टा रह सकें। इतनी भर तो सारभूत बात है और बाकी तो सब लोकाचारमें लोकदृष्टिसे ठीक माना जाता है, वस्तुतः तो वह सब विरूपक विपदा है। यह जीव कर्मोंके वश होकर जगह-जगह ठगा जाता है। विषयोंका लोभ हो तो उससे यह जीव ही ठगा गया। कषायों की जागृति हो तो उससे यही जीव ठगा गया।

वर्तन व कर्त्तव्य—भैया! कोई किसीका क्या बिगाड़ करता? खुद दुर्भाव करता और खुद ठगा जाता। ऐसे इस संसारमें किसी भी पदमें किसी भी स्थितिमें रमण करने का यत्न न करें हो रहा है उसे एक गले पड़े बजाये सरेको बात जाने। क्या करें? बहुतसे मित्रोंके साथ मजाक कर रहे थे कि मजाक-मजाकमें ही एक मित्रको नीचा दिखानेके लिये उसके गलेमें ढोल डाल दिया तो वहाँ वह क्या करे? अगर कुछ क्रोध करने लगे तो उससे तो मजाक और कई गुना बढ़ जायेगा। उस समयका विवेक तो यही है कि दो पतली डंडी उठाये और घूम-घूमकर उसे बजाना शुरू कर दे। इससे मित्रों के द्वारा किया हुआ मजाक खत्म हो जायेगा। ऐसे ही क्या है? इस संसारमें अनेक परिस्थितियां बन गयी हैं। गृहस्थीका समागम, मित्रजनोंका समागम, अनेक अनेक प्रकार की स्थितियां हैं, उनमें हम क्या करें? बस जैसे निर्वाह बने, जैसे इनसे सुलझना बने उस तरहका उपाय करलें। पर बात मनमें सही जानते रहें और यत्न करें अपने अन्तःस्वरूपकी ओर लगे रहने का।

संसारमें सम्बन्धोंकी मायारूपता—कहो माता मरकर पुत्री बन जाय, बहिन मरकर स्त्री बन जाय, कहो वही स्त्री मरकर पुत्र हो जाय, पिता मरकर पुत्र हो जाय और वही मरकर पुत्रका पुत्र हो जाय, इस प्रकार कितने ही परिवर्तन इस संसारमें हो रहे हैं। किसको क्या एकान्तः मानें? ये सब संसाररूपमें रहटकी घड़ियां ऊपर आयीं, नीचे गयीं, जैसे यह चक्र चलता है इस प्रकार यह सब सम्बन्धोंका चक्र है। आज यह कुछ है, कल यह कुछ हो जायेगा। आज पिता है यही उसीका पुत्र हो जाय। तो यों से कोई भी सम्बन्ध कहीं जमकर नहीं रह सकते। अमुक जीव मेरा यह है ऐसा तो निर्णय नहीं है, कैसे मायाजाल है, इन्द्रजाल है! इन्द्र मायने आत्मा उसका यह जाल है। कभी कुछ, कभी कुछ अथवा परमार्थरूप कुछ नहीं है, बनना-बिगड़ना ही बना रहता है।

कर्त्तव्यका निर्णय—भैया! गंभीरतासे सोचिये परिवर्तनशील इस संसारमें हमारा क्या कर्त्तव्य है, इसी परिवर्तनमें बहते चले जायें क्या? कोई ठौर कोई आश्रय कोई आलम्बन यहाँ परमार्थभूत नहीं है, जिस एक को पकड़कर जिएं। एक पर अपना श्रद्धान, ज्ञान, आचरण करके शरण लिए रहें तृप्त और सन्तुष्ट रह सकें। ऐसा काम तो केवल अपनेको निर्मल ज्ञानमात्र अनुभवमें लेना है। इसी कार्यसे उद्धार है, अन्य किसी भी उपायसे अपना कल्याण नहीं है। अठारह नातेकी कथा प्रसिद्ध है। तीन व्यक्तियोंमें परस्परमें ६-६ नाते हो गए और बेढंगे नाते। यह सब एक संसारका संसरण है। यहाँ सारतत्त्व कुछ नहीं है। कोई भी स्थिति बड़प्पन की नहीं है कि जहाँ हम अपनेको तृप्त कर सकें।

कल्पनासे थोड़ी देरको मौज मनानेसे यह चूकता नहीं है, फिर अन्य कल्पनाएँ ऐसी बन जाती हैं कि वहाँ अपने आपको दुःखी बना लेता है। बचपनमें और तरहका दुःख। बड़े हुए, परिचय बना तब और तरहका दुःख। कुछ इज्जत बढ़ी और बड़े बने, उम्रके बड़े हुए, लोकमें बड़े हुए तब और तरहका दुःख। जरा-जरा-सी बातमें अपना अपमान महसूस करना, यह विपदा इस अज्ञानी जीव पर हर जगह छापी हुई है। कहाँ जाय, कहाँ छुपे, कैसे बचे। जब तक अपने सत्य स्वरूपका भान नहीं होता तब तक जीव चैन का पात्र नहीं हो सकता।

**श्वभ्रे शूलकुठारयन्त्रदहनक्षारक्षुरव्याहृतैः।
स्तिर्यक्षु श्रमदुःखपावकशिखासंभारभस्मीकृतैः ॥१३१॥
मानुष्येऽप्यतुलप्रयासवशागैर्देवेषु रागोद्धृतैः।
संसारेऽत्र दुरन्तदुर्गतिमये बम्भ्रम्यते प्राणिभिः ॥१३२॥**

नरकमें भ्रमण और क्लेश—इस दुरन्त दुर्गतिरूप संसारमें यह जीव यों निरन्तर भ्रमण करता है। कभी यह जीव नरकोंमें गया तो वहाँ अनेक तरहके दुःख हैं, किसी को शूली पर चढ़ा दिया किसीको कुल्हाड़ीसे काट डाला, किसी को घानीमें पेल दिया, किसीको आगमें पटक दिया, किसीको छारसे ढक दिया, किसीको अनेक शस्त्रोंसे पीड़ा पहुँचाया, यों अनेक तरहके दुःख उन नरकोंमें प्राप्त हुए हैं और इतना ही नहीं इस देहके तिल-तिल बराबर टुकड़े फिर मिल जाते हैं, मरते नहीं हैं। देहकी भी कैसी-कैसी विचित्रताएँ हैं? यहाँ किसी एक आदमी की हत्या कर दी जाय तो उसे फांसीका दंड दिया जाता है। कोई पुरुष उद्वण्ड होकर हजारों आदमियोंकी हत्या करा दे, क्रूरता ही बनाये रहे तो उसका दंडविधान यहाँ क्या हो सकता है? उसका दंड तो ऐसी नरकगतिमें उत्पन्न होना ही है। कई बार शरीर छिद जाय, देहके तिल-तिल बराबर खण्ड हो जायें फिर भी मरे नहीं। ऐसे दुःख इस जीवने सहे हैं।

तिर्यञ्चोंमें भ्रमण और क्लेश—तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न हो तो वहाँ भी बड़े परिश्रमका दुःख भोगना पड़ता है। शक्तिसे भी अधिक बोझ लादा जाता, चाबुक मारकर उन्हें चलाया जाता। बेचारे वे पशु जीभ निकालते जाते हैं फिर बड़ी तेजी से चाबुक मार-मारकर उनसे बोझा ढुलाते हैं। डंडोंकी मार अथवा कीलियोंसे चुभोया जाना, यह सब उनको चलने के लिए प्रेरित करते हैं। वे पशु किसको अपने दर्दकी कहानी सुनायें? किसी-किसी पशुको यों ही अग्निमें डाल दिया जाता है। मांसभक्षी लोग जिस पर वंश नहीं चलता उसे तो मारकर पीछे पकाकर खाते हैं और जिसपर वश चलता है उसे सीधा यों ही अग्निमें डाल देते हैं। कितनी क्रूरता है एकेन्द्रिय व विकलत्रिकोके तो क्लेश हो अटपट है। यों नाना प्रकारसे क्लेश इस तिर्यञ्च गतिमें यह जीव सहता है।

मनुष्यभवमें क्षुब्ध प्रयास—मनुष्य हुआ तो क्या, वहाँ भी बड़े-बड़े परिश्रमके क्लेश सहता है। रात-दिन विकल्प और बहुतसे कामोंके करने का यत्न इन सबका श्रम सहता रहता है। कल्पनाएँ तो

बहुतकीं, पर अन्त में उनसे फल क्या मिला? लो जीरो उत्तर आयेगा। कितने वर्ष लगा दिए मोहवश दूसरोंकी रक्षामें रागमें, प्रसन्न करनेमें? बहुत-बहुत निर्वाह किया सब तो लोगोंका, अन्तमें इसके हाथ लगा क्या? यह मेरा और फिर अकेला आ गया! मिला क्या? कुछ भी नहीं। यह मनुष्य भी रागवश बड़े-बड़े प्रयास करके केवल संक्लेशोंको सहता है।

देवलोकमें बरबादी—कभी देव हुआ तो वहाँ राग से उद्वण्ड रहा करता है। खाने-पीनेका तो दुःख वहाँ है नहीं, दुकान, रोजगार करनेका तो वहाँ काम है नहीं। वैक्रियक शरीर है। तो ऐसी सुविधामें उनके राग प्रबल हो जाता है और रागदाहसे जल भुनकर वे अपने जीवनको यों ही समाप्त कर देते हैं। सागरों की आयु उनकी होती है, किन्तु उस सुखमें ऐसा मस्त हो जाते हैं कि सुखका समय कैसे व्यतीत हो गया? यह वे जान नहीं पाते।

तथ्यकी बात—यों यह जीव चारों गतियोंमें भ्रमण कर करके नाना क्लेशों को सहता है। क्या सार है? निर्धन धनके बिना दुःखी हैं। धनी तृष्णाके कारण दुःखी हैं। मूर्ख ज्ञानके न होनेसे दुःखी हैं, कुछ पढ़-लिख भी गए, पर लौकिक ज्ञानकी तृष्णासे, लोगोंके द्वारा सम्मान, अपमान आदिकी शंकासे कल्पनाओंसे दुःखी रहा करते हैं। यो ही सभी बातों में लगा लो। तथ्यकी बात यह है कि यह संसार सुखरूप नहीं है, असार है। यहाँ रमण किये जाने योग्य कुछ भी नहीं है। हितपद रम्य तो एक निज सहजस्वरूप है, उसकी ओर झुकाव हो तो कल्याण है।

समाप्त